जिज्ञासुओं के लिए

राधास्वामी सत्संग ब्यास

जिज्ञासुओं के लिए

जिज्ञासुओं के लिए

डॉ. टी. आर. शंगारी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रकाशक:
डी. के. सीकरी, सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमल सिंह
पंजाब 143 204

© 1997, 2014 राधास्वामी सत्संग ब्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित पहला संस्करण 1997

सातवाँ संस्करण 2014

मुद्रक:

Published by:
D. K. Sikri, Secretary
Radha Soami Satsang Beas
Dera Baba Jaimal Singh
Punjab 143 204

© 1997, 2014 Radha Soami Satsang Beas
All rights reserved First edition 1997

Seventh edition 2014

29 28 27 26 25 24 23 8 7 6 5 4 3 2

ISBN

Printed in India by:

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से	7
पाठकों से निवेदन	8
खोज की आवश्यकता	11
कुछ मूल बातें	15
सत्संग ब्यास के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण	22
संतमत का सार	66
नाम लेने का उद्देश्य	87
नाम लेने के लिए कुछ शर्तें	91
जिज्ञासुओं से विनती	101
संदर्भ सूची	106
संदर्भ ग्रंथ	109
परमार्थ संबंधी पुस्तकें	110

प्रकाशक की ओर से

यह छोटी-सी पुस्तक परमार्थ की खोज करने वालों तथा नाम के अभिलाषियों के लाभार्थ छपवाई जा रही है। इसमें सुझाव दिया गया है कि जिज्ञासु को नाम लेने का निर्णय करने से पहले उस साधन और मार्ग के हर पहलू के बारे में खोज कर लेनी चाहिये जिसकी सहायता से वह मंज़िल पर पहुँचने की आशा करता है। उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि नाम क्या है, नाम का महत्त्व क्या है, नाम की साधना उसे किस मंज़िल पर पहुँचायेगी और नाम उसे कहाँ से और कैसे मिल सकता है। जब तक उसे हर पहलू पर विचार करने के बाद साधन और मार्ग के सही होने का पूरा विश्वास नहीं होगा, वह सच्चे हृदय से इस मार्ग पर नहीं चल सकेगा। जब तक साधक के मन में संदेह हो, वह पूरे विश्वास के साथ अभ्यास नहीं कर सकता और जब तक वह पूरी लगन के साथ मार्ग पर नहीं चलता, मंज़िल पर पहुँचने का प्रश्न ही नहीं उठता।

खोज का महत्त्व बताने के साथ-साथ इस पुस्तक में राधास्वामी सत्संग ब्यास के संबंध में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर प्रकट किये गए विचारों के उद्धरण दिये गए हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कई धर्मों के संत-महात्माओं द्वारा समय-समय पर प्रकट किये गए विचार प्रस्तुत किये गए हैं तथा नाम लेने के उद्देश्य, संतमत के मूल सिद्धांत और उस रहनी का विवरण दिया गया है जिसके मुताबिक़ जीवन ढालने की नाम लेनेवाले व्यक्ति से आशा की जाती है।

आशा है जिज्ञासु इस पुस्तक से अधिक से अधिक लाभ उठायेंगे।

डेरा बाबा जैमल सिंह,
ज़िला अमृतसर (पंजाब)

सेवा सिंह,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास

पाठकों से निवेदन

बानी का सही उच्चारण

गुरबानी

अकसर देखने में आया है कि हिंदी पाठक श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की बानी (गुरबानी) का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं। गुरबानी मूल रूप में गुरुमुखी लिपि में लिखी गई है। इसमें कई शब्दों के अंत में ह्रस्व इ (ਿ) और ह्रस्व उ (ੁ) की मात्राओं का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग केवल व्याकरण की दृष्टि से है; बानी पढ़ते समय इन मात्राओं का आमतौर पर उच्चारण नहीं किया जाता। हिंदी पाठक बड़े प्रेम से गुरबानी का पाठ या गायन करने का यत्न करते हैं, लेकिन इन मात्राओं और कुछ अन्य अपरिचित हिज्जों (स्पेलिंग) के कारण अनजाने में उच्चारण ग़लत हो जाता है। हम श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का पूरा सम्मान करते हैं । हम चाहते हैं कि पाठक बानी का उच्चारण ग़लत न करें। इसलिए गुरबानी का रूपांतर देवनागरी लिपि में करते समय ये ह्रस्व मात्राएँ हटा दी गई हैं और अन्य कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं ताकि हिंदी भाषा के पाठक गुरबानी का सही उच्चारण कर सकें।

उदाहरण के रूप में:

मूल रूप: *कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु॥*
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु॥
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु॥

उच्चारण रूप: *कुदरत पउण पाणी बैसंतर कुदरत धरती खाक॥*
सभ तेरी कुदरत तूं कादिर करता पाकी नाई पाक॥
नानक हुकमै अंदर वेखै वरतै ताको ताक॥

यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन मात्राओं का प्रयोग पढ़ने में भले ही नहीं होता, लेकिन गुरबानी में इन मात्राओं का व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। गुरु साहिबान के संदेश को अधिक गहराई से समझने के इच्छुक गुरबानी का मूल रूप में अध्ययन कर सकते हैं।

हिंदी बानी

हिंदी बानी में कहीं-कहीं 'ख' वर्ण को 'ष' लिखा जाता है-जैसे देषि, मूरिष, पंषी। लेकिन इन शब्दों का उच्चारण देखि, मूरिख, पंखी किया जाता है। इसलिये सही उच्चारण की दृष्टि से इस पुस्तक में आवश्यकतानुसार 'ष' के स्थान पर 'ख' वर्ण का प्रयोग किया गया है।

प्रकाशक

खोज की आवश्यकता

हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी फ़रमाया करते थे कि किसी आध्यात्मिक मार्ग का चुनाव करना तथा किसी महात्मा की शरण लेना जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण फ़ैसला है। शादी-ब्याह, ज़मीन-जायदाद, व्यापार आदि के सब फ़ैसले सांसारिक हैं। इनका संबंध इस संसार की नश्वर शक्लों और पदार्थों से है, जबकि परमात्मा की प्राप्ति के लिए किसी मार्ग को चुनने का और किसी महात्मा की शरण लेने का संबंध हमारी आत्मा से है। हम सांसारिक कामकाज में कितने सावधान होते हैं। ज़मीन-जायदाद का सौदा करना हो, लड़के-लड़की की शादी करनी हो तो कितनी खोज और छानबीन करते हैं, कितनी बार और कितनी तरह से मन की तसल्ली करते हैं। इससे सौ गुणा ज़्यादा खोज और तसल्ली उस मार्ग और उस महात्मा के बारे में करनी चाहिये जिसकी सहायता से हम परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं, क्योंकि यह निर्णय हमारे लोक और परलोक, दीन और दुनिया दोनों पर बहुत गहरा प्रभाव डालता है। इस खोज में अगर सारी उम्र भी बीत जाये तो समझना चाहिये कि यह समय व्यर्थ नहीं गया।

दृढ़ निश्चय और निष्पक्ष दृष्टिकोण से हर संभव खोज करने के बाद यदि यह विश्वास हो जाये कि जिस मार्ग का हमने चुनाव किया है वह सही है, सच्चा है और जिस मार्गदर्शक का सहारा हम लेने जा रहे हैं, वह उस मार्ग का पूरा जानकार है, वह स्वयं मंज़िल तक पहुँच चुका है और हमें भी मंज़िल तक पहुँचा सकता है, तो हम विश्वास के

साथ, निश्चिंत होकर उसके मार्गदर्शन में मंज़िल की तरफ़ अपने क़दम बढ़ा सकते हैं। अगर मन में थोड़ी भी शंका हो, तो लोगों की कही-सुनी बातों के प्रभाव में आकर हमारे क़दम डगमगा जाते हैं और हम दुविधा के कारण मार्ग से भटक जाते हैं या हमारे भटक जाने का भय बना रहता है। महाराज चरन सिंह जी एक उदाहरण द्वारा यह बात समझाया करते थे:

अमृतसर से दिल्ली जाने का इच्छुक व्यक्ति अगर चलने से पहले दिल्ली जानेवाली सड़क की पूरी जानकारी प्राप्त कर लेता है, तो निश्चिंत होकर अपनी कार दौड़ाते हुए अपनी मंज़िल पर पहुँच जाता है। अगर वह पहले जानकारी प्राप्त करके अपनी तसल्ली नहीं करता तो वह कभी एक रास्ता पकड़ता है, कभी दूसरा, कभी एक पथ-प्रदर्शक का सहारा लेता है, कभी दूसरे का और इस प्रकार वह राह में भटक जाता है या उसके भटक जाने का भय रहता है।

जिज्ञासु रूहानी तरक़्क़ी के लिए जो भी साधन और मार्ग अपनाना चाहता है, उसके बारे में खोज करते समय पूरी सावधानी से काम लेना चाहिये। उदार हृदय और बुद्धि से खोज करनी चाहिये। परंपरागत मान्यताओं और सुनी-सुनाई बातों से ऊपर उठकर अपनी स्वतंत्र सोच के आधार पर निर्णय लेना चाहिये। धर्मग्रंथों, संतों की वाणी और उनके जीवन-चरित्र के अध्ययन और संत-महात्माओं के सत्संग द्वारा हर प्रकार की शंकाएँ दूर कर लेनी चाहियें।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। उसे दोनों ओर से देखकर ही उसके खरे या खोटे होने का निर्णय किया जा सकता है। हर सिद्धांत, संस्था और उसके मुखिया के प्रशंसक और प्रचारक भी होते हैं तथा विरोधी और आलोचक भी। जिज्ञासु को दोनों प्रकार के लोगों के विचारों की परख करने के बाद ही अपनी राय बनानी चाहिये। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी के वचन हैं, 'Critics are our best friends.' अर्थात्, आलोचक हमारे सबसे अच्छे मित्र होते हैं। आप कहा करते थे कि अपने कान प्रशंसकों की ओर से बंद, परंतु आलोचकों की ओर से

खुले रखने चाहियें। आलोचकों की नीयत पर शंका करने के स्थान पर उन्हें अपना हितैषी मानते हुए उनके विचारों पर पूरी गंभीरता, निष्पक्षता और उदार हृदय से ध्यान देना चाहिये। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, *'जिन्हा दिसंदड़िआ दुरमत वंञै मित्र असाडड़े सेई॥'*[1] आलोचकों द्वारा बताई गयी त्रुटियों, कमज़ोरियों और कमियों को ध्यान में रखकर अपने निर्णय में सही संतुलन क़ायम करने का प्रयत्न करना चाहिये। यही कारण है कि इस पुस्तक में राधास्वामी सत्संग ब्यास के साहित्य, इसके अनुयायियों, प्रबंधकों और संतों के संबंध में समय-समय पर प्रकाशित हुई कुछ आलोचनात्मक पुस्तकों के मुख्य अंश उनके मूल रूप में सम्मिलित किये गए हैं। आलोचकों के विचार बिना किसी टिप्पणी या स्पष्टीकरण के उनके ही शब्दों में दिये गए हैं और उनकी छानबीन का कार्य जिज्ञासुओं पर छोड़ दिया गया है ताकि वे अपनी स्वतंत्र खोज के आधार पर इनके विषय में स्वयं निर्णय ले सकें।

इसके अतिरिक्त, जिज्ञासु की दृष्टि किसी साधन और मार्ग से प्राप्त होनेवाले लाभ तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिये। जो कठिनाइयाँ उसे उस राह पर चलते हुए आयेंगी और जीवन का जो ढंग उस पर चलने के लिए उसे अपनाना होगा, उसका पूरा अनुमान पहले लगा लेना चाहिये। जब दिल और दिमाग़, हृदय और बुद्धि की पूरी तसल्ली हो जाये, जब मन में उस साधन और मार्ग के पक्ष में स्पष्ट और शक्तिशाली आवाज़ आये और मन पूरी तरह उस पर चलने के लिए तैयार हो जाये, तभी उस पर क़दम बढ़ाने का निर्णय लेना चाहिये। मीराबाई का पद है:

माई री मैं तो लीनो गोविंदो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै छुपकै, लियो री बजंता ढोल॥
कोई कहै महँगो कोई कहै सोंघो, लियो री तराजू तोल॥
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल॥
याही कूं सब लोग जाणत हैं, लियो री आंखी खोल॥[2]

अर्थात्, लोग मेरे साधन और मार्ग के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करते हैं, परंतु मुझे उनकी आलोचना की चिंता नहीं है। मैंने आँखें खोलकर और सोच-समझकर ही इस मार्ग और इष्ट को चुना है।

मीराबाई के वचनों से यह संकेत मिलता है कि जो व्यक्ति स्वयं समझ-बूझकर साधन और मार्ग का चयन करता है और निजी अनुभव से उसके सही होने की परख कर लेता है, उसके मन में उसके संबंध में कोई संदेह नहीं रहता। वह पूरे विश्वास के साथ उस मार्ग पर आगे बढ़ता चला जाता है और सच्चे हृदय से अपने इष्ट के साथ प्रेम करता है।

कुछ मूल बातें

जीवन का मूल उद्देश्य

सबसे पहले हमें अपने मन में यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हमारे जीवन का मूल उद्देश्य क्या है, क्योंकि उद्देश्य से ही हमारे प्रयास की दिशा निर्धारित होती है और जब तक हम अपने हर कार्य को उस उद्देश्य के अनुसार नहीं ढालते, हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकते। हमारे हर कार्य से यह स्पष्ट होना चाहिये कि हम किस आदर्श की ओर बढ़ रहे हैं। अगर हम सच्चे दिल से स्वीकार करते हैं कि जीवन का मूल ध्येय परमात्मा की प्राप्ति है तो हमारा हर संकल्प, हर विचार और हर कार्य उस ध्येय की पूर्ति की ओर होना चाहिये। जो पानी नौ नाकों से बह रहा है, वह खेतों को नहीं सींच सकता। उसी तरह अगर हमारा ख़याल फैला हुआ है, अगर हम दुविधा और चित्त की अस्थिरता के शिकार हैं, अगर कभी एक ओर पैर बढ़ाते हैं, कभी दूसरी ओर, तो हम मंज़िल पर पहुँचने की आशा नहीं कर सकते। परमात्मा की भक्ति, परमात्मा के प्रेम और परमात्मा की पूजा का वास्तविक उद्देश्य यह है कि हम अपने फैले हुए ध्यान को एक बिंदु पर केंद्रित करें और एकाग्रचित्त होकर जीवन के मूल उद्देश्य की प्राप्ति की ओर लगें।

एक परमात्मा

परमार्थ के सच्चे जिज्ञासु का वास्तविक लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है। संसार के सब धर्म और संत-महात्मा स्वीकार करते हैं कि परमात्मा एक है। ऋषि-मुनियों ने उस परमात्मा को 'एक-एका' कहा है, क़ुरान शरीफ़ में

उसे 'रब्बुल आलमीन' कहा गया है और गुरु साहिब ने उसे 'जगजीवन साचा एको दाता॥'[1] कहा है। सारे संसार का कर्ता, प्रतिपालक और स्वामी वह एक परमात्मा है।

जिस परमात्मा की हमें तलाश है, वह परमात्मा कहीं बाहर नहीं है। वह सबके अंदर है। ऋषि-मुनियों ने मनुष्य शरीर को 'नर-नारायणी देह' कहा है। जिस नारायण ने मनुष्य को पैदा किया है, वह हरएक के अपने अंदर है और उस नारायण से मिलाप भी अंदर ही किया जा सकता है। सूफ़ी फ़क़ीरों ने मनुष्य शरीर को सच्ची मसजिद और सच्चा क़ाबा कहा है। गुरु साहिब कहते हैं, 'आतम मह राम राम मह आतम... ॥'[2], 'घट घट मै हर जू बसै संतन कहिओ पुकार॥'[3] और 'हर मंदर एह सरीर है गिआन रतन परगट होए॥'[4] कबीर साहिब संकेत करते हैं:

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय॥[5]

अर्थात्, वह सच्चा प्रियतम हर घट में बसा हुआ है, पर वह गुप्त है। वास्तविक बड़ाई उस प्रेमी की है जिसने उसे अंदर प्रकट कर लिया है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सभ मह जोत जोत है सोए॥
तिस कै चानण सभ मह चानण होए॥
गुर साखी जोत परगट होए॥[6]

अर्थात्, उस प्रभु का प्रकाश हरएक के अंदर है, लेकिन गुरुमुखों के उपदेशानुसार उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। गुरु रामदास जी का कथन है:

कासट मह जिउ है बैसंतर मथ संजम काढ कढीजै॥
राम नाम है जोत सबाई तत गुरमत काढ लईजै॥[7]

भाव यह है कि लकड़ी में अग्नि होती है, परंतु उसे युक्ति द्वारा प्रकट करना पड़ता है। इसी प्रकार राम-नाम की ज्योति हरेक के अंदर है, परंतु इसे गुरु के उपदेश पर चलकर ही प्रकट किया जा सकता है।

परमात्मा से संबंध

संसार के सब धर्म और संत-महात्मा इस बात पर एकमत हैं कि आत्मा और परमात्मा में प्रेम का अटूट रिश्ता है। परमात्मा की प्राप्ति और जगत से मुक्ति का आधार परमात्मा का प्रेम है; जाति-पाँति, क़ौम, मज़हब या मुल्क नहीं। मनुष्य अपने कर्मों और परमात्मा की भक्ति द्वारा बड़ा बनता है; क़ौम, मज़हब, मुल्क और जाति-पाँति के द्वारा नहीं। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं, '*फरीदा अमल जे कीते दुनी विच दरगह आए कंम॥*'[8] साईं बुल्लेशाह कहते हैं, '*अमलां उत्ते होन निबेड़े खड़ी रहन गीआं जातां।*'[9] गुरु नानक साहिब कहते हैं, '*जात पत सभ तेरै नाए॥*'[10], '*हमरी जात पत सच नाउ॥*'[11] और '*अगै जात न जोर है अगै जीउ नवे॥*'[12] अर्थात्, परमात्मा की दरगाह में आत्मा की निर्मलता, उसके भक्ति-भाव और नाम की कमाई का मूल्य है, जाति-पाँति का नहीं। कबीर साहिब कहते हैं, '*जाति पाँति पूछै न कोई। हरि कँह भजै सो हरि का होई॥*'[13] पलटू साहिब के वचन हैं, '*पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोइ करै हंकार। साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥*'[14] गुरु साहिब सावधान करते हैं:

जात जनम नह पूछीऐ सच घर लेहो बताए॥
सा जात सा पत है जेहे करम कमाए॥[15]

संतों का मार्गदर्शन

तीसरी बात संतजन यह समझाते हैं कि जिस परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के समय इसके संचालन का पूर्ण विधान बनाया है, उसने तब से ही अपने साथ मिलाप के सच्चे मार्ग का भी सृजन किया है। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि परमात्मा एक है और उसके द्वारा सारे संसार के लिए बनाया गया विधान भी एक ही है:

एको अमर एका पतिसाही जुग जुग सिर कार बणाई हे॥[16]

गुरु अर्जुन देव जी ने दोहरा संकेत दिया है:

मारग प्रभ का हर कीआ संतन संग जाता॥[17]

संत का मारग धरम की पउड़ी को वडभागी पाए॥[18]

अर्थात्, सच्चा धर्म संतों का बताया हुआ मार्ग है। यह मार्ग उस प्रभु द्वारा सृजित है, इसका भेद संतों से प्राप्त होता है।

संसार का कोई संत परमात्मा की प्राप्ति का नया, छोटा या अधिक उपयोगी साधन लेकर नहीं आता। सब पूर्ण संत परमात्मा द्वारा रचित एक ही अनादि मार्ग का ज्ञान देते हैं। तुलसी साहिब जी कहते हैं:

मनसूर, सरमद, बूअली और शम्स मौलाना हुये।
पहुंचे सभी इस राह से, जिसने कि दिल पुखता किया॥[19]

अर्थात्, केवल भारत के संतों ने ही नहीं, अन्य देशों के कामिल सूफ़ी दरवेशों ने भी प्रभु-प्राप्ति के एक ही मार्ग का उल्लेख किया है।

हज़रत ईसा का कथन है: परमात्मा का बनाया हुआ कानून अटल है। सृष्टि के अंत तक इसमें रत्ती भर भी बदलाव नहीं आ सकता।* वह एक परमात्मा यहूदियों, यूनानियों और सभी क़ौमों, नस्लों का मालिक और स्वामी है और उसने सबकी मुक्ति का एकमात्र साधन सदा के लिए बनाया है।†

क़ुरान शरीफ़ में आता है: हम अल्लाह (परमात्मा) और उसके कलाम (शब्द) में विश्वास रखते हैं जो उसने हमारे लिए प्रकट किया है, जो उसने इब्राहीम, इस्माइल, इसहाक, याकूब और उसकी संतान के लिए प्रकट किया; जो मूसा और ईसा को मिला था और जो सब नबियों

---

* For verily I say unto you, Till heaven and earth pass, one jot or one tittle shall in no wise pass from the law, till all be fulfilled.[20]

† For there is no difference between the Jew and the Greek: for the same Lord over all is rich unto all that call upon him.[21]

को उनके रब्ब (परमात्मा) ने दिया था। हम इनमें से किसी में कोई अंतर नहीं समझते और उसी एक अल्लाह के अधीन हैं।[22]

गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रन्थ में गुरु साहिबान के अलावा अलग-अलग वक़्तों, धर्मों, जातियों और प्रांतों में हुए क़रीब 30 पूर्ण संतों की वाणी दर्ज की है। इनमें से बाबा फ़रीद सूफ़ी दरवेश थे और भीखण साहिब ब्राह्मण थे। बाबा फ़रीद, गुरु नानक साहिब से 300 वर्ष पहले और संत नामदेव जी 200 वर्ष पहले हुए। गुरु साहिब इस बात पर ज़ोर देना चाहते थे कि हर धर्म और जाति के हर कामिल मुर्शिद ने सदा से ही परमात्मा की प्राप्ति के एक ही साधन और मार्ग का प्रचार किया है।

हुज़ूर स्वामी जी महाराज ने *सारबचन वार्तिक* में कबीर साहिब, गुरु रविदास जी, गुरु नानक साहिब, तुलसी साहिब, दादू साहिब, पलटू साहिब, मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़ आदि अनेक ऐसे महात्माओं के नाम दिये हैं जिन्होंने 'शब्द' या 'नाम' द्वारा परम सत्य की प्राप्ति की। आप *सारबचन संग्रह* में कहते हैं:

यह सार सार सब गाया। संतन मत भाख सुनाया॥[23]

अर्थात्, मैं किसी नये साधन या मार्ग का प्रचार नहीं कर रहा। जिस साधन का सभी संतों ने प्रचार किया है, मैं भी उसी की महिमा कर रहा हूँ। आप समझाते हैं:

राधा आदि सुरत का नाम। स्वामी आदि शब्द निज धाम॥
सुरत शब्द और राधास्वामी। दोनों नाम एक कर जानी॥
सुरत शब्द संग करे बिलास। यों राधास्वामी ढिंग बास॥
राधास्वामी दो कर जान। होयँ एक सत लोक ठिकान॥[24]

अर्थात्, राधास्वामी मत कोई नया मज़हब या संप्रदाय नहीं है। यह संतमत का ही दूसरा नाम है। 'राधा' वह आदि सुरत (आत्मा) है जो सृष्टि के सृजन के समय सतलोक से मृत्युलोक में उतरी। 'स्वामी' वह आदि

शब्द है जिसका पल्ला पकड़कर आत्मा अपने निज धाम (सतलोक) वापस पहुँच सकती है। यही राधास्वामी मत या संतमत का संक्षिप्त सार है।

भक्ति का सच्चा साधन – नाम

संतजन सावधान करते हैं कि प्रत्येक युग के लोग अलग-अलग ढंग से परमात्मा की भक्ति करते रहे हैं, पर कलियुग में नामभक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य साधन द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की आशा रखना व्यर्थ है। गुरु रविदास जी का कथन है:

सतजुग सत तेता जगी दुआपर पूजाचार॥
तीनौ जुग तीनौ दिड़े कल केवल नाम अधार॥[25]

आप विभिन्न युगों में प्रचलित दान-पुण्य, हवन-यज्ञ और अनेक प्रकार के कर्मकांड का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कलियुग में केवल नाम ही आत्मा को परमात्मा से मिलानेवाला एकमात्र सच्चा साधन है। गोस्वामी तुलसीदास समझाते हैं:

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥[26]

अर्थात्, चारों वेदों में और चारों युगों में नाम की महत्ता स्वीकार की गयी है, पर कलियुग में तो नाम के बिना भक्ति के किसी अन्य साधन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। गुरु अर्जुन देव जी चेतावनी देते हैं:

अब कलू आइओ रे॥ इक नाम बोवहो बोवहो॥
अन रूत नाही नाही मत भरम भूलहो भूलहो॥[27]

अर्थात्, जिस प्रकार बे-मौसम के बीज से फ़सल की कामना करना व्यर्थ है, उसी प्रकार कलियुग में नामभक्ति के सिवाय किसी अन्य साधन द्वारा आवागमन के बंधनों से मुक्ति और परमात्मा की प्राप्ति की आशा रखना भारी भूल है।

हुज़ूर स्वामी जी महाराज भी सावधान करते हैं:

कलजुग कर्म धर्म नहिं कोई। नाम बिना उद्धार न होई॥[28]

जिज्ञासु को यह बात मन में बिठा लेनी चाहिये कि सच्ची रूहानियत या संतमत कोई धर्म या मज़हब नहीं है, न ही यह कोरा दर्शन या सिद्धांत है। यह वह अनादि और सर्वसाँझी जीवन-युक्ति है जिसका संतजन अपने-अपने ढंग से समय-समय पर प्रचार करते आये हैं। संत-महात्मा अपने-अपने समय की आवश्यकताओं के अनुसार नयी भाषा और नये अंदाज़ में इसका वर्णन करते हैं, पर जिस साधन और मार्ग का वे प्रचार करते हैं, उसमें किसी प्रकार की भिन्नता होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। संतमत वास्तव में नाम की साधना या नाम के अभ्यास का ही दूसरा नाम है। इसका सारा ज़ोर हृदय की सफ़ाई, आचरण की निर्मलता और नाम की कमाई पर है। गोस्वामी तुलसीदास समझाते हैं:

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥[29]

बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥[30]

अर्थात्, संतमत और राम-नाम की साधना समानार्थक है और वेदों, पुराणों सहित सब धर्मग्रंथों में इसी युक्ति का उपदेश दिया गया है। गुरु साहिब कहते हैं:

सगल मतांत केवल हर नाम॥[31]

एक नाम तारे संसार॥[32]

अर्थात्, सभी धर्मों का असल आधार और संसार से पार उतरने का एकमात्र साधन परमात्मा का नाम है।

उपरोक्त चर्चा को मुख्य रखते हुए जिज्ञासु को इन बातों की गहराई से खोज करनी चाहिये कि मुक्ति देनेवाला नाम क्या है, वह नाम कहाँ है, उस नाम की प्राप्ति कैसे हो सकती है तथा उस नाम की साधना कैसे की जा सकती है।

सत्संग ब्यास के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण

कई वर्ष पूर्व, सन् 1981 में *राधास्वामी बाबेयाँ दे काले लेख* नामक पुस्तक छपी थी। इसमें संतमत की और राधास्वामी सत्संग ब्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की भारी आलोचना की गयी थी। हुज़ूर महाराज जी ने डेरे के प्रकाशन-विभाग से संबंधित बहुत-से विद्वानों की उपस्थिति में यह सारी पुस्तक सुनकर कहा, "आलोचक हमारे परम मित्र होते हैं। इसलिए इस पुस्तक में की गयी आलोचना से लाभ उठाकर हमारी पुस्तकों में जहाँ संशोधन की ज़रूरत है, कर लें। हम पुस्तक के लेखक के आभारी हैं जिसने डेरा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में इतनी गहरी दिलचस्पी दिखाई है और इतनी मेहनत से अपने विचार प्रकट किये हैं।"

संतमत और राधास्वामी सत्संग ब्यास के आलोचकों ने दो सौ पृष्ठों तक की पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं, इसलिए इन पुस्तकों में उठाये गए मूल प्रश्नों को ही यहाँ शामिल किया गया है। इन पुस्तकों के प्रकाशक और लेखक का पूरा पता दिया गया है ताकि जिज्ञासु चाहें, तो इन पुस्तकों को पढ़ सकें। इन सभी पुस्तकों की प्रतियाँ डेरा के पुस्तकालय में रखी गयी हैं। जिज्ञासुओं को चाहिये कि उन्हें पढ़ें और उन पर विचार करें। महाराज चरन सिंह जी के वचन हैं, "We are struggling souls on the Path. अर्थात् हम परमार्थ के मार्ग पर संघर्ष करनेवाले निर्बल जीव हैं। '*जेता समुंद सागर नीर भरिआ तेते अउगण हमारे॥*[1]' हममें अनेक त्रुटियाँ

और कमज़ोरियाँ हैं। हमें स्वयं भी अंदर झाँककर देखने की आदत डालनी चाहिये और दूसरों की कटु आलोचना से भी निष्पक्ष दृष्टिकोण से लाभ उठाना चाहिये। उद्देश्य आलोचकों से वाद-विवाद करने या उनको ग़लत करार देने का नहीं, केवल अपने सुधार का होना चाहिये।"

राधास्वामी सत्संग ब्यास के आलोचकों ने अपनी पुस्तकों में मुख्यत: इस तरह के भाव या विचार प्रकट किये हैं:

1. संतमत, जिसका राधास्वामी प्रचार करते हैं, गुरुमत विरोधी है। राधास्वामी सत्संग की पुस्तकों में श्री आदि-ग्रन्थ की वाणी की ग़लत व्याख्या की गयी है, वाणी के मन मरज़ी के अर्थ किये गए हैं और वाणी के व्याकरण की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया है।
2. इन पुस्तकों में नाम, शब्द, वाणी, गुरुवाणी आदि पदों की जो व्याख्या की गयी है, वह गुरुमत के मूल विचारों के अनुसार नहीं है।
3. राधास्वामी सत्संग के साहित्य में यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि नाम, शब्द, हुक्म, वाणी आदि पदों का एक ही अर्थ है। यह गुरुमत के विरुद्ध है।
4. राधास्वामी मत में नाम और शब्द के दो भेद किये गए हैं: वर्णात्मक और धुनात्मक। धुनात्मक नाम या शब्द के अर्थ, नाद, नाद की धारा या 'Audible Life Stream' किये गए हैं और बार-बार ध्यान को अंदर नाद की धारा से जोड़ने पर ज़ोर दिया गया है। यह ठीक नहीं है। गुरुमत में नाम के जो और अर्थ हैं, उनको कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।
5. सुरत-शब्द योग, जिसका राधास्वामी मत में प्रचार किया जाता है, असल में योगियों से लिया गया है, इसका गुरुमत से कोई संबंध नहीं। गुरुमत में सुरत-शब्द का तात्पर्य बिलकुल भिन्न है।
6. वक़्त के देहधारी गुरु के बारे में जिन विचारों पर ज़ोर दिया जाता है, वह ठीक नहीं है। देहधारी गुरु या व्यक्ति के रूप में

गुरु की प्राप्ति हर समय संभव नहीं, इसलिए इसे सिद्धांत के तौर पर स्थायी नहीं बनाया जा सकता।

7. आँखों के पीछे जिस सूक्ष्म बिंदु पर ध्यान एकाग्र करने के लिए कहा जाता है उसको वे 'तिल' या 'तीसरा तिल' कहते हैं। इसकी व्याख्या के लिए वाणी के जो उदाहरण वे देते हैं, उनके अर्थ ठीक नहीं किये जाते।
8. राधास्वामी मत में गुरु का जूठा खाने का प्रचार किया जाता है।

इस प्रकार के विचारों के अलावा इन पुस्तकों में महाराज सावन सिंह जी द्वारा अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किये जाने के विषय में, डेरे की परमार्थी संपत्ति के बारे में तथा डेरे से संबंधित संत-सतगुरुओं की हस्ती और शक्ति के बारे में कई प्रश्न उठाये गए हैं।

पहली पुस्तक

राधास्वामी प्रचार गुरुमत विरोधी है
लेखक: नरैण सिंह, 26-शिवालय रोड, अमृतसर।
प्रकाशक: भक्त पूरन सिंह, पिंगलवाड़ा, अमृतसर।

लेखक के विचार हैं:

1. "राधास्वामी विचारधारा का साराँश यह है कि परमात्मा नाम और शब्द के रूप में सारे संसार में विद्यमान है पर नाम और शब्द के अर्थ, इस विचारधारा के गद्दीदार 'नाद-रौ' ही करते आये हैं। उनके लिए 'नाद-रौ' (Sound Current) ही सच्चा नाम है और यही सच्चा शब्द है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि नाम या शब्द के अन्य अर्थ सच्चे अर्थ नहीं हैं। इस अन्तर को समझाने के लिए उन्होंने नाम के दो रूप बनाये हुए हैं—एक वर्णात्मक जो लिखा, बोला, सुना या पढ़ा जा सके, जैसे वेदों-शास्त्रों में नाम की व्याख्या करते हुए बताया गया होता है

और दूसरा नादात्मक या धुनात्मक जो अन्तर में सुना जाता है। यह दावा भी किया गया है कि पहला, क्योंकि देश और काल से सम्बन्धित होता है, स्थायी नहीं हो सकता और इसी कारण सभी महापुरुषों ने दूसरे नाम की ही महिमा युग-युगान्तरों से की है।" (पृ.3)

2. "बाबा चरन सिंह जी का यह विचार सही नहीं कि 'नाद-रौ' की शक़्ल में प्राप्ति के साधन इतने आसान और सादा हैं कि पाँच साल का बच्चा और सौ साल का बूढ़ा भी झट सफल हो जाते हैं। प्राप्ति कोई ख़ाला जी का घर नहीं, यह मेहनत और कमाई माँगती है। हमारी इस बात को राधास्वामी साधक भी स्वीकार करेंगे।" (पृ.5)
3. "सुरत-शब्द-योग जो राधास्वामियों का भी सार है, का आरम्भ योगियों से ही हुआ था। राधास्वामियों के लगभग और भी सारे मोटे-मोटे सिद्धान्त योग-मत के भी सिद्धान्त थे।" (पृ.8)
4. "गुरु साहिब के अपने वचनों द्वारा नाम और शब्द दोनों ही 'नाद-रौ' से बिल्कुल भिन्न दिखाये गए हैं।" (पृ.11)
5. "शब्द को अन्दर या बाहर सुनने से नहीं, विचार करने से असल योग आयेगा।" (पृ.12)
6. "गुण गावै सुख सहज निवास॥ (रामकली दखणी ओअंकारु महला 2) अर्थात्: जो हरि के गुण गाता है (हरि का गुण गाकर सिमरन करता है) उसका सहज सुख में निवास हो जाता है। देखो, गुण गाने को भी हरि का सिमरन कहा है। यह नाम योग है। इसे गुरुमुख योग या गुरुमत योग भी कहा जाता है।" (पृ.25)
7. "राधास्वामियों को गुरु नानक देव जी के यही विचार समझने और स्वीकार करने चाहियें, अगर वे गुरु नानक देव जी का मार्ग ही सिक्ख जगत को दिखलाने का दावा करते हों, जैसा कि वे सचमुच ही करते हैं। पर, अफ़सोस, कि वे नाम, शब्द और वाणी, तीनों के ही अर्थ 'Audible Life Stream' अर्थात्

सुनी जानेवाली जीवन-रौ या नाद-रौ, सच्ची वाणी का अर्थ 'True Sound' (सच्ची नाद-रौ), हरि-कीर्तन का अर्थ 'Divine Melody' (दिव्य संगीत) आदि करते हैं। इसी प्रकार ही वे सिमरन, भजन, ध्यान आदि के अर्थ भी और-और ही करते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने नाम और शब्द के और अर्थ भुला ही दिये हैं और इसलिए घूम फिर कर वे 'नाद-रौ' पर ही आ जाते हैं। जैसे, भजन का अर्थ वे 'नाद-रौ' को सुनना ही करते हैं। उनकी बोली में एक 'तीसरा तिल' भी है जो आँखों के पीछे, अन्दर की ओर बताया जाता है। यह परमात्मा के स्थान का, हमारे निज-घर का दरवाज़ा है और परमात्मा को मिलने के लिए इसी दरवाज़े को खोलना पड़ता है।" (पृ.40)

8. "यह भी बताया जाता है कि हर मनुष्य के अन्दर हरि-ज्योति जल रही है, जिसके अन्दर से बड़ी मीठी और सुरीली वाणी निकल रही है। जो मनुष्य भी उस ज्योति के दर्शन करता है और वाणी की सुरीली धुन सुनता है, वह किसी भी अन्य सांसारिक पदार्थों के मोह, प्यार से छूट जाता है।" (पृ.41)
9. "साफ़ दिखाई दे रहा है कि गुरुवाणी व्याकरण, जो गुरु अर्जुन देव जी ने विशेष तौर पर अर्थों को आसान बनाने के लिए प्रयुक्त की थी, की जानकारी बाबा चरन सिंह जी को नहीं है। इसलिए ही उनके लेखों में नाम, नामु, नामि, नामै, नामो और शब्द, शबदि, शबदु, शबदे, शबदू आदि के अर्थ में मात्रा की भिन्नता, कोई अन्तर नहीं पाती और अर्थ ग़लत हो जाते हैं।" (पृ.45)
10. "गुरु साहिबान के वचनों को किस बेपरवाही से बिगाड़ा जाता है, इसके स्थान-स्थान पर उदाहरण हैं। एक उद्धरण: 'सबदि मेरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजी वार॥' के अर्थ भी बाबा चरन सिंह जी की पुस्तक Divine Light के पृ.70 पर, इस प्रकार दिये गए हैं:

'Merge yourself with the Shabd (Word), that is the real death; he who dies thus will not have to die again.'

अर्थात् शब्द (नाद-रौ) में लीन हो जाओ, यही असल मरना है। जो मनुष्य ऐसे मरता है, उसे फिर मरना नहीं पड़ता।

देखो, और अजीब बात—गुरु अंगद देव जी के श्लोक '*अखी बाझहो वेखणा*... (आदि ग्रन्थ, पृ.139)' को पुस्तक Divine Light के पृ.48 पर भी दिया गया है। यहाँ नाम को नाद-रौ के अर्थों में लेकर कहा गया है कि गुरु नानक देव जी ने भी इस 'नाद-रौ' की महिमा इस प्रकार की है:

"See thou without thine eyes and walk without thine feet, work, speak and hear but use no hand nor tongue nor ear, thus while living die. Thus the Word of God thou will hear and thy Beloved meet." (पृ.48)

11. "वाणी के अर्थों की तोड़-मरोड़ के सम्बन्ध में हम एक अन्य उदाहरण भी देते हैं जो Divine Light के पृ.97 पर है: 'बाणी गुरू गुरू है बाणी विच बाणी अंम्रित सारे॥ गुर बाणी कहै सेवक जन मानै परतख गुरू निसतारे॥ (आदि ग्रन्थ, पृ.982)'

यहाँ 'वाणी' और 'गुरुवाणी' दोनों को ही 'नाद-रौ' के अर्थों में लेकर अर्थ इस प्रकार किये गए हैं:

'Bani (the Word) is the Guru and the real form of Guru himself is Bani, the reservoir of nectar—that too is found within the Bani. It is through the Guru's Bani, O disciple, that the soul is liberated. He who knows this secret is granted liberation through the living Master.'

देखो, यहाँ गुरुवाणी ने कुछ कहना (बताना) है और सेवक ने इस पर विश्वास लाना है, इस बात को छोड़ ही दिया गया है और अर्थों को बिल्कुल अलग ही ले जाया गया है, वाणी को 'नाद' के अर्थ देने के लिए। अन्य नोट करनेवाली बात यह भी है

कि वचन तो ये हैं गुरु राम दास जी के, पर इन्हें गुरु नानक देव जी के कहा गया है। यहाँ हमें केवल इतना ही बताना है कि किस बेपरवाही से तुकों का चुनाव होता है।" (पृ.49)

दूसरी पुस्तक

राधास्वामी तोड़-मरोड़ का अनुपम इलाज
गुरुमत के माणिक-मोती पहचानो
लेखक: नरैण सिंह, 26-शिवालय रोड, अमृतसर।
प्रकाशक: भक्त पूरन सिंह, पिंगलवाड़ा, अमृतसर।

1. "यह अमूल्य पुस्तक प्रकाशित करके मुझे अत्यन्त ख़ुशी हो रही है। मैं दो ट्रैक्ट (एक पंजाबी में और एक अंग्रेज़ी में) पहले प्रकाशित कर चुका हूँ—ये दोनों ही राधास्वामियों के कच्चे प्रचार को नंगा करने के लिए प्रकाशित हुए थे। पहले में बाबा चरन सिंह जी को, जो इस समय डेरा बाबा जैमल सिंह के गद्दीनशीन हैं, आदरपूर्वक विनती की गयी थी कि सिक्खी को सिक्खों के अपने आप पर ही छोड़ दिया जाये और इसकी रूप-रेखा को न बिगाड़ा जाये। दूसरे ट्रैक्ट में 'नाम और शब्द' की व्याख्या करके बताया गया था कि इन दोनों विचारों का राधास्वामी विचारधारा से कोई सम्बन्ध नहीं है।" (पृ.2-3)
2. "बाबा साहिब को अपील भी की गयी थी कि राधास्वामी पुस्तकों में गुरुमत को बुरी तरह बिगाड़ा जा रहा है और वे कृपा करके उन पुस्तकों में आवश्यक संशोधन कर दें और गुरुमत के सम्बन्ध में, भविष्य में कुछ भी न लिखा करें, क्योंकि उन्हें गुरुमत का बहुत पता भी नहीं है।" (पृ.3)
3. "सिक्खी से इतना अन्याय करके भी उनको न कोई पश्चात्ताप है और न वे अपनी पुस्तकों में कोई संशोधन करने को तैयार हैं।" (पृ.3)

4. "अब हम यह नई पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें किसी स्थान पर भी राधास्वामियों की तोड़-मरोड़ का नया ज़िक्र नहीं छेड़ा गया और केवल सिक्खी का सही रूप ही दिखाया गया है। ...इसमें स्पष्ट शब्दों में समझाया गया है कि सिक्खी में नाद का कोई स्थान नहीं।" (पृ.4)
5. "हम बाबा चरन सिंह जी को एक बार फिर विनती करते हैं कि वे, जिस स्थान पर आप बैठे हैं, उसकी महानता को मुख्य रख कर ही, अपना फ़र्ज़ पहचानें, क्योंकि सच आख़िर सच है और काँच, काँच है। उन्हें यकीन कर लेना चाहिये कि हम उनसे किसी प्रकार का झगड़ा नहीं चाहते पर हमारे लिए यह बात असह्य है कि गुरु-सिक्खी की हानि हो रही हो।" (पृ.167)

तीसरी पुस्तक

गुरु नानक साहिब का गुरु कौन?
राधास्वामी ब्यास की ओर से की गयी गुरुवाणी की मनमुखी व्याख्या का उत्तर।
लेखक: बाबा सरबजोत सिंह बेदी, 'ऊना साहिब',
संचालक: गुरुमत सिद्धान्त प्रचारक संत समाज (मनसूरां), लुधियाना।

राधास्वामी सत्संग ब्यास द्वारा प्रकाशित प्रो.जे.आर.पुरी द्वारा रचित पुस्तक '*गुरु नानक का रूहानी उपदेश*' के बारे में बाबा सरबजोत सिंह के विचार इस प्रकार हैं:

1. "प्रो.जनकराज पुरी... सिक्ख मानसिकता को शब्द-गुरु सिद्धान्त से तोड़ कर देह-पूजा की ओर प्रेरित करना चाहता है।" (पृ.2)
2. "लेखक ने गुरुवाणी की मनमुखी व्याख्या करके शारीरिक गुरु को श्रेय प्रदान करके झूठ और कुफ़र तोला है।" (पृ.1)

3. "हम गुरु नानक के अनुयायी हैं, इसलिए हमारा कर्तव्य बन जाता है कि ऐसे मनमुख विद्वान को गुरुवाणी के प्रकाश द्वारा समझायें कि गुरु नानक देव जी का गुरु कोई शारीरिक गुरु नहीं था। उनका गुरु शब्द अथवा परमात्मा था।" (पृ.1-2)
4. "राधास्वामियों के गुरु धार्मिक पथ-प्रदर्शक, बाबा सावन सिंह, *गुरुमत सिद्धान्त*, भाग पहला, पृ.699 में गुरु नानक साहिब के गुरु के बारे कहते हैं कि उनका कोई देहधारी गुरु नहीं था। पर पता नहीं उनका श्रद्धालु प्रो.पुरी गुरु नानक देव जी के गुरु के सम्बन्ध में शंकाएँ क्यों पैदा कर रहा है।" (पृ.5)
5. "उनका विचार है कि शब्द मनुष्य की अगुआई नहीं कर सकता और न ही वह महापुरुष मनुष्य की अगुआई कर सकते हैं जो सचखण्ड जा चुके हैं।" (पृ.6)
6. "प्रो.पुरी 'सतगुरु' शब्द का अर्थ जीवित गुरु अर्थात् देहधारी गुरु मानते हैं। वे देहधारी गुरु की ज़रूरत के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए कहते हैं कि मनुष्य उस गुरु से ही लाभ उठा सकता है जो जीवित हो।" (पृ.6)
7. "प्रो.साहिब अगर देहधारी गुरु की उच्चता के बारे में गुरुवाणी के उदाहरणों के बिना व्याख्या करते तो सिक्ख जगत को यह बात न चुभती पर उन्होंने अपने झूठ को सच बनाने के लिए गुरुवाणी का सहारा लिया है जो मनमुखता की निशानी है।" (पृ.6)
8. "गुरुवाणी में देह अथवा शरीर को कभी भी गुरु के तौर पर स्वीकार नहीं किया गया। यह ठीक है कि सिक्ख धर्म में दस गुरु साहिबान देहधारी थे। पर उनकी गुरुता की आधारशिला शब्द था, शरीर नहीं।" (पृ.7-8)
9. "ज्ञान की प्राप्ति तभी हो सकती है अगर गुरु के शब्द पर ध्यान से, लगन से और दृढ़ इरादे से विचार किया जाये।" (पृ.9)
10. "सिक्ख गुरु शरीर नहीं थे बल्कि शब्द थे। शब्द तो सच होता है, जन्म-मरण से निर्लेप होता है।" (पृ.9)

11. "जो मनुष्य देहधारी गुरु को उच्चता प्रदान करते हैं, वे मनमुख हैं। गुरु नानक साहिब जी ऐसे कुमार्ग पर डालने वाले गुरुओं की संगति से सावधान करते हुए कहते हैं:

केते गुर चेले फुनि हूआ॥ काचे गुर ते मुकति न हूआ॥"
(पृ.932) (पृ.9)

12. "देहधारी गुरु आप भी भटक चुका है, वह अपने शिष्यों को मुक्ति का मार्ग कैसे प्रदान कर सकता है।" (पृ.9)

चौथी पुस्तक

देहधारी गुरुडम की शंकाओं के उत्तर
सिक्ख मिशनरी कालेज (रजि.)
1051, कूचा नं.14, फील्ड गंज, लुधियाना-8.
सब आफ़िस: ए-143, फ़तह नगर, नई दिल्ली-110018

1. "राधास्वामी नाम कोई ईश्वरवादी नाम नहीं है। न ही इसका अर्थ सुरत-शब्द है। यह शिवदयाल सिंह 'स्वामी' की पत्नी राधा के नाम से चला मत है, जिसके अर्थ तथा स्वरूप को बाद में बदलने का व्यर्थ यत्न किया गया है।" (पृ.31)
2. "इस मत में व्यक्तिगत गुरु की पूजा, शब्द-सुरत का मनोकल्पित अभ्यास, त्रिकुटी, सुन्न, गुफा और दशम् द्वार में सुरत चढ़ाकर अनहद शब्द सुनने और कल्पित राधास्वामी धाम तक पहुँचने की योगमत की भाँति शिक्षा दी जाती है।" (पृ.31)
3. "गुरु की जूठ जिसे यह 'प्रसादी' कहते हैं, खाने को पुण्य कर्म समझा जाता है।" (पृ.31)
4. "ये मांस, शराब का तो प्रयोग नहीं करते परन्तु हुक्का, बीड़ी, सिग्रेट जो सबसे निकृष्ट नशा है, से अपने श्रद्धालुओं को मना

नहीं करते। क्योंकि ऐसा करने से बहुसंख्यक हिन्दू इस मत से बाग़ी हो सकते हैं।" (पृ.31)

5. "राधास्वामी की पुस्तक 'सारबचन' में एक बड़ा ग़लत वर्णन किया गया है। वह यह है:

सतियुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता॥

भाव पिछले समय में किसी को शब्द-सुरत के निज-नाम का ज्ञान नहीं हुआ। आगे चल कर 'सारबचन' में लिखा है:

'शब्द की तारीफ़ तो हरेक मत में है, मगर शब्द का भेद किसी मत की किताब में नहीं लिखा।'

यह राधास्वामियों की मूढ़ चाल है कि एक ओर गुरुवाणी का दुष्प्रयोग करके अपना गुरुडम चलाना और दूसरी ओर गुरुवाणी की सच्चाई को जानते-बूझते हुए प्रकट न करना।" (पृ.32)

6. "राधास्वामियों ने राधास्वामी रूहानी सफ़र का नक्शा खींचा है जो दलील रहित, हास्यास्पद और गप्पौड़ों से परिपूर्ण है।" (पृ.33)

7. "रूहानी सफ़र की झाँकियों के बिना राधास्वामी जोगमत के बताये हुए छह चक्रों की भूल-भुल्लैया में भी सुरति को घुमाते हैं। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कैसे योगमत की नकल करके राधास्वामियों ने भोले-भाले लोगों को भटकाने का प्रयास किया है।" (पृ.33)

8. "राधास्वामी एक ओर तो मांस और शराब से नफ़रत करते हैं और कहते हैं कि इनका प्रयोग करने वाले को परमात्मा किस तरह मिल सकता है पर दूसरी ओर शम्स तब्रेज़, मौलाना रूमी तथा हाफ़िज़ के उदाहरण अपनी पुस्तकों में देते हैं जो सारे मांस खाते थे।" (पृ.33)

9. "राधास्वामी जो नाम देते हैं उसे गुप्त, गुँझलदार और जलेबीदार बयान करते हैं कि किसी को बताना नहीं, पर सिक्खी में परमात्मा के नाम को गुप्त नहीं माना गया।" (पृ.34)
10. "राधास्वामी सामयिक गुरु असामयिक गुरु (वक़्त गुरु तथा बे-वक़्त गुरु) भी मानते हैं। 'सारबचन' में लिखा है:

पिछलों की तज टेक तेरे भले की कहूं।
वक्त गुरु को मान तेरे भले की कहूं॥

इसके अनुसार यदि बीत चुकों का आसरा नहीं रखना है, वक़्त गुरु को ही मानना है तो राधास्वामियों के पिछले सारे गुरुओं की कोई महानता नहीं रहती" (पृ.35)
11. "राधास्वामियों की पुस्तक 'आत्म ज्ञान' के पृ.46 पर 'सारबचन' का उदाहरण देकर शब्द को जीवन का आधार कहा है और शब्द को मानने से ही जीव का उद्धार होता है, बताया गया है। शब्द की महिमा करते हुए लिखा है:

शब्दहि सूर शब्द ही चंदा। शब्द बिना जिव रहता गंदा॥...
शब्द जानियो सब का सारा। शब्द मानियो होय उबारा॥
शब्द रहे सबही से न्यारा। शब्द करे सब जीव गुज़ारा॥

सारबचन संग्रह, 7:5:3-10

ये राधास्वामियों की परस्पर विरोधी बातें हैं जो लोटन कबूतर की कलाबाज़ियाँ मारने के समान हैं। एक ओर कहते हैं कि शिवदयाल सिंह का 'नाद' गुरु था और दूसरी ओर कहते हैं, ग्रन्थ गुरु नहीं हो सकता, जो शब्द और आत्मिक ज्ञान का संग्रह है। तीसरे स्थान पर वक़्त गुरु की डुगडुगी पीटते हैं। चौथे स्थान पर बे-वक़्त गुरुओं अर्थात् मुर्दों की समाधियाँ बनाये जाते हैं।

वास्तव में वे आप दुविधा में फँसे हैं कि गुरु कौन है?"
(पृ.35)

12. "बाबू सावन सिंह ने गुरुवाणी के शब्द संकलित करके 'गुरुमत सिद्धान्त' नामक एक पोथी छपवाई जिसमें कहीं ज़िन्दा गुरु और गुरुमत से उलट भी वाक्य दर्ज हैं। जैसा कि पृ.66 पर दर्ज है:

ग्रन्थ-पोथियाँ हमें सत्य का स्पर्श नहीं दे सकतीं।

कैसी तर्कहीन आपा विरोधी बात लिखी है।

एक ओर *'गुरुमत सिद्धान्त', 'प्रेम पत्र', 'सारबचन'* और अन्य पोथियाँ छापकर लोगों को देते हैं और उनकी कथा सुनाते हैं। अगर ग्रन्थों से सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती तो फिर उनके छापने और कथा करने का क्या लाभ है?" (पृ.37)

13. "राधास्वामी तो सत्संग के समय गुरुवाणी का प्रयोग करते हैं। यह याद रखने की आवश्यकता है कि राधास्वामी गुरुवाणी को गुरुमत दर्शाने के लिए नहीं पढ़ते, बल्कि अपने गुरुडम के प्रचार के हेतु प्रयोग करते हैं। अनुभव तथा आत्म ज्ञान सतगुरु भक्तों का वर्णन करके बाद में कहना कि हमें गुरु मानो, आपस विरोधी तथा हास्यास्पद बात है।" (पृ.37)

14. "सन् 1947 को बाबू सावन सिंह ने कई साथियों को कहा कि उत्तराधिकारी सन्त कृपाल सिंह होंगे। परन्तु वे नहीं बन सके। सन् 1948 में बाबू जी का देहान्त हो गया। बाबू जी के पौत्र स.चरन सिंह ने ब्यास वाले राधास्वामियों के साथ गाँठजोड़ करके अपनी पार्टी बना ली—जाट और ग़ैर जाट का प्रश्न खड़ा करके सन्त कृपाल सिंह को शंट कर दिया। सरदार बहादुर जगत सिंह को गुरु बनाया गया जिसने डेरे की सारी जायदाद अपने नाम इंतकाल करवाने की कोशिश की पर वह हो न सकी। सन् 1951 में उनका देहान्त हो गया तब सरदार चरन सिंह गुरु बन गये।" (पृ.37)

15. "डेरे का प्रबन्ध नवीन तथा सुधारे हुए तरीक़े का होने के कारण चाय, रोटी आदि सस्ती उपलब्ध करा कर, सेवादारों की भरमार द्वारा, आये-गये पर प्रभाव डाल कर लोगों के ईमान और धर्म को गिराने में कामयाब हो रहे हैं। दूसरी ओर हमारी मुखी जत्थेबन्दियाँ सिक्ख मत के प्रचार की ओर से उदासीन होकर राजनीति की गहरी खड्ड में गिर कर, लोगों पर अपना ग़लत प्रभाव डाले जा रही हैं।" (पृ.38)

पाँचवीं पुस्तक

राधास्वामी बाबेयों के काले लेख
गुरुमत या सन्तमत के बुनियादी संकल्प
लेखक: नरैण सिंह, 26-शिवालय रोड, अमृतसर।
प्रकाशक: भक्त पूरन सिंह, पिंगलवाड़ा, अमृतसर।

1. (क) "गुरु साहिब हरि गुरु के सिद्धान्त को ही पहल देते हैं।" (पृ.190)
   (ख) "शख़्सी गुरु की प्राप्ति हर समय सम्भव नहीं और इसको सिद्धान्त के रूप में स्थायी नहीं बनाया जा सकता।" (पृ.191)
2. (क) "नाद को गुरुमत में स्थान नहीं दिया गया था।" (पृ.30)
   (ख) "गुरुमत का नाम राधास्वामियों का नाम नहीं है जिसे वे नाद कहते हैं।" (पृ.62)
3. (क) "शब्द और नाम दोनों गुरुमत के अलग-अलग विचार हैं।" (पृ.25)
   (ख) "'नाम' और 'शब्द' गुरुमत के भिन्न-भिन्न विचार हैं जिन्हें नाद कहकर एक बना लिया गया है।" (पृ.52)
4. "गुरु साहिबान भी सुरत-शब्द के धारक थे... पर किसी एक स्थान पर भी योग मार्ग या अब राधास्वामी मार्ग के 'सुरत-शब्द योग' से इनका मेल नहीं है।" (पृ.151)

5. "गुरु-शब्द को गुरुआई देनेवाले सतगुरु, गुरु गोबिन्द सिंह जी; आप ही उस शब्द की अलौकिक महिमा कर रहे हैं। गुरु-शब्द उस गुरु का रूप है जो आप भी परमात्मा का रूप था।" (पृ.67)
6. "सिक्ख गुरु साहिबान की वाणी को बड़ी बेदर्दी से तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है।" (पृ.1)
7. "मैं यह बिल्कुल नहीं चाहता कि राधास्वामी अपने धर्म का प्रचार बन्द कर दें, पर इस प्रचार की पुष्टि वे गुरुमत से कराने का यत्न न किया करें क्योंकि उन्हें गुरुमत का कुछ भी पता नहीं।" (पृ.3)
8. "आज के गद्दीदार बाबा चरन सिंह को तो गुरुमत के चार अक्षर भी लिखने नहीं आते। फिर कोई बताये कि वे गुरुमत को समझने का दावा ही क्यों करते हैं, जबकि गुरुमत की सारी विचारधारा ही गुरुमुखी अक्षरों में दी हुई है।" (पृ.3-4)
9. "यह सिक्ख कौम का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि एक पंजाबी बाबा जैमल सिंह, जो उस समय सिक्ख ही था, ने राधास्वामी विचारधारा आगरा से अपनाकर ब्यास आकर अपनी गद्दी कायम कर ली थी, जिसका अड्डा आज 'डेरा बाबा जैमल सिंह' कहलाता है। 'दुर्भाग्य' शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि बाबा साहिब और उनके बाद में आये डेरा के गद्दीनशीन बाबा सावन सिंह, बाबा जगत सिंह और अब बाबा चरन सिंह, केशधारी होने के कारण, क्योंकि सिक्ख ही समझे जाते रहे हैं, ये सारे क्रम से सिक्खों को गुमराह करने में सफल होते रहे हैं। हालत यह हो गयी है कि सिक्ख गुरु साहिबान की गुरुमत विचारधारा, जो गुरु ग्रन्थ साहिब में दी गयी है, की रूप-रेखा ही बदली जा रही है। इन दु:खदायी हालात को देखकर ही मैंने कई ट्रैक्ट पिंगलवाड़ा की ओर से प्रकाशित करवाये थे और मौजूदा गद्दीनशीन बाबा चरन सिंह को प्रेरित

भी करता रहा था कि वे अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करें और सिक्खी के साथ हो रहा अन्याय बन्द करें। अफ़सोस से कहना पड़ता है कि उन पर कोई असर ही नहीं हुआ था।" (पृ.5)

10. "राधास्वामी मत के ठोस रूप में अपने कोई पाँव भी नहीं हैं। 'सुरत-शब्द योग' जो राधास्वामियों का सार है, कोई नया मार्ग नहीं है। इसका आरम्भ योगियों से ही हुआ था।" (पृ.11)
11. "जहाँ तक योग-मत का सम्बन्ध है, वह पतंजलि जी के हाथों में... एक साईंस का रूप ले चुका था, जिसे समझ लेना भी आसान नहीं, अमल में लाना तो बहुत ही कठिन है, चाहे ऋषि जी की बौद्धिक प्रतिभा का हर ईमानदार आदमी को कायल होना पड़ता है। इस बात से भी इनकार नहीं हो सकता कि अगर कोई पुरुष ऋषि जी के मार्ग की सारी मंज़िलें तय कर सके तो वह अपने आत्म-आपे में दाख़िल हो सकता है और शक्तिशाली होकर तथा सब दु:खों-क्लेशों से मुक्त होकर, आनन्द भी प्राप्त कर सकता है। इसीलिए ही भाई गुरुदास जी ने ऋषि जी की महिमा इस प्रकार की थी:

"सेखनाग पातंजल मथिआ गुरमुखि सासत्र नागि सुनाई।"

वार1: पौड़ी 14

12. "अनहद ध्वनियाँ भी योग-मार्ग की प्राप्तियों में ही गिनी गयी हैं।" (पृ.16)
13. "राम को नाम से जोड़ने का अधिकार राधास्वामियों को कहाँ से और कैसे प्राप्त हुआ है अगर 'नाम' को वे परमात्मा कहते हैं तो राम को नाम से लगाकर क्या अर्थ बनेगा? गुरुवाणी में तो नाम के साथ हरि, प्रभु, शिव आदि कई पद लगते हैं, इन सबको ही नाम (नाद) के अर्थ कैसे दिये जायेंगे? अगर कृत्रिम नाम 'बनावटी' हैं और नाद ही सच्चा नाम है तो बनावटी और सच्चा नाम इकट्ठे कैसे कर लिये गए हैं?" (पृ.34)

14. "गुरु साहिबान नाम-मार्ग को सबसे महान समझते हैं पर यह नाम-मार्ग नाद-मार्ग नहीं है।" (पृ.35)
15. "कीर्तन निरा राग नहीं है, यह गुणी हरि के गुणों, बड़ाइयों को संगीत द्वारा नये रूप में प्रस्तुत करता है। यह नाम का ही एक अंग हो जाता है और हरि से अभेद हो जाने का मार्ग खोल देता है:

गुण कहि गुणी समावणिआ॥ (माझ महला 3)

और

गुण कहु हरि लहु॥ (धनासरी महला 4)

अर्थात्, हरि की सिफ़त प्रशंसा द्वारा उसकी प्राप्ति कर लो।" (पृ. 42)

16. "नाम और वाणी (शब्द), दो भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं।" (पृ.44)
17. "राधास्वामियों की ओर से नाम को 'गुप्त नाम' या 'सच्चा नाम' कहने का मनोरथ केवल यह होता है कि गुरुमत के 'नाम' को छोटा करके 'नाम' शब्द को नाद के अर्थ दिये जा सकें। इसकी पुष्टि के लिए ही यह वाक्य भी दिया गया है:

किरतमु नामु कथै तेरे जिहबा॥ सति नामु तेरा परा पूरबला॥"

मारू म:5, पृ.44

18. "'नाम' और 'शब्द' गुरुमत के भिन्न-भिन्न विचार हैं, जिन्हें 'नाद' कहकर एक बना लिया गया है। इस एक बुनियादी कमी ने सारी सोच-विचार ही उल्टी-सीधी कर दी है और सिक्ख जगत खीजता, कुढ़ता रहता है।" (पृ.52)
19. "बाबा चरन सिंह को सोचना चाहिये कि वे किस प्रकार का प्रचार करा रहे हैं? अगर वे 'सतगुरु' कहलाते हैं तो इस प्रकार के बनावटी सहारे लेने शोभा नहीं देते, उन्हें बल्कि पश्चात्ताप

करना चाहिये कि वे सिक्ख गुरुओं की महान वाणी को बिगाड़ने का कारण बने हुए हैं।" (पृ.56)

20. "पुस्तक (सन्तमत विचार) का पृ.237—भाई गुरदास जी निज-पद (सचखण्ड) को नाम का धाम मानते हैं।
टिप्पणी: पर निज-पद को सचखण्ड कैसे बना लिया गया है और यह नाम का धाम कैसे है?" (पृ.60)

21. "एक स्पष्ट निष्कर्ष यह भी निकला है कि गुरुमत का नाम राधास्वामियों का नाम नहीं है, जिसे वे नाद कहते हैं। पर देखो, उन्होंने अपने लिए एक और मुसीबत खड़ी कर ली है, क्योंकि 'शब्द' और 'नाम' दोनों को ही नाद कहते हैं। इस दशा में जब 'नाम' नाद नहीं है तो 'शब्द' भी नाद नहीं हो सकता। पर हम, एक अन्य पक्ष से, इस प्रकार नहीं सोचते, क्योंकि हमें पता है कि नाद की अपनी एक बाकायदा साईंस भी है, जिसे फेंका भी नहीं जा सकता। हम इसे राधास्वामियों की अपनी एक तंगदिली ही गिनते हैं, कि उन्होंने दो अलग-अलग सिद्धान्तों को एक कर लिया है, जिसके कारण ही उन्हें हास्यास्पद सीमा तक 'नाम या शब्द' का प्रयोग अपनी पुस्तकों में हर घड़ी और हर जगह करना पड़ता है, किसे वे छोड़ें और किसे रखें? क्या उन्हें पूछा जा सकता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया था, अर्थात् नाद को दो नाम क्यों दिये थे? क्या यह केवल इसलिए किया गया था कि गुरुमत को बिगाड़ने के लिए एक अन्य अच्छा हथियार मिल जाये? पर अब तो बल्कि लेने के देने पड़ गये हैं। हम दिखाते आ रहे हैं कि गुरुमत के अन्दर ये दोनों भिन्न-भिन्न सिद्धान्त हैं, चाहे ये दोनों एक-दूसरे के निकट हैं और इसलिए एक-दूसरे के सहायक भी बनते हैं। 'शबदे ही नाउ ऊपजै' का यही अर्थ है।" (पृ.62-63)

22. "शब्द ने ही नाम पैदा किया है, वह निर्माण जो नाम ने करना था, शब्द ने ही कर दिया है। हमने अभी खोलकर दिखाना भी है कि

यह शब्द परमात्मा से ही कभी-कभी और किसी बिरले महापुरुष के द्वारा ही उतरता है जो परमात्मा में आप लीन होकर उसका रूप हो जाता है। यह शब्द एक तरह परमात्मा का या गुरु का अपना आप होता है। इस शब्द ने ही भक्तों के अंदर परिवर्तन करना है, चमत्कार करना है, जैसे 'नाम' आप करता है।" (पृ.64)

23. "बाबा चरन सिंह का यह ख़याल हास्यास्पद है कि नाद की शक्ल में प्राप्ति के साधन इतने आसान हैं कि पाँच साल का बच्चा और सौ साल का बूढ़ा दोनों ही झट सफल हो जाते हैं। इस ग़लतफ़हमी का उत्तर राधास्वामी साधकों से ही पूछा जा सकता है।" (पृ.76)

24. "उतपति परलउ सबदै होवै॥ सबदै ही फिरि ओपति होवै॥

महला 3, पृ.117

इस तुक में भी शब्द का अर्थ हुक्म ही है। ...उत्पत्ति और प्रलय दोनों हरि के हुक्म में होते हैं और उसके हुक्म में ही फिर उत्पत्ति हो जाती है।" (पृ.101)

25. "गुरु ग्रन्थ साहिब में 'शब्द' पद को आम तौर पर गुरुवाणी, गुरु-शब्द, गुरु के वाक्य, गुरु के वचन या अक्षर आदि के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ...इसे हरि के हुक्म के अर्थ में भी दिया गया है और कुछ और स्थानों पर हुक्मी अर्थात् हुक्म वाले परमात्मा के अर्थ में भी।" (पृ.102)

26. "पुस्तक का पृ.260—गुरु अमर दास जी फ़रमाते हैं कि दिन-रात गोबिन्द-गोबिन्द लफ़्ज़ का जाप करते रहना गोबिन्द की भक्ति नहीं है। गोबिन्द के साथ मिलाने वाली गोबिन्द की सच्ची भक्ति सच्चे शब्द या सच्चे नाम की कमाई है:

"गोबिद गोबिद कहै दिन राती गोबिद गुण सबद सुणावणिआ॥"

म.3, पृ.121

"*टिप्पणी*: यहाँ भी अफ़सोस वाली कई बातें हैं। गुरु अमरदास जी के मुँह में जो कुछ भी डाला जा रहा है, वह गुरु साहिब से अन्याय है। उनके वचनों का उद्धरण देकर इनका पहला भाग '*हउ वारी हउ वारी गोविंद गुण गावणिआ*', जान-बूझकर छोड़ ही दिया गया है, क्योंकि मनोरथ तो है 'नाद' की भक्ति को आगे करना और इसे गुरु साहिब की हिमायत भी देना। उद्धरण का पूरा अर्थ यह है: मैं बलिहार, कुरबान जाऊँ बार-बार उन भक्तों पर जो गोबिन्द के गुण गाते हैं। हाँ, निरा गोबिन्द-गोबिन्द अगर कोई दिन-रात कहता रहे तो लाभ नहीं क्योंकि मनोरथ तो शब्द द्वारा गोबिन्द के गुणों को सुनना (और ग्रहण करना) होता है।" (पृ. 107)

27. "*गुपती बाणी परगट होइ। नानक परख लए सचु सोइ॥*"

'गुपती बाणी' का भाव यह है कि आरम्भ में जो वाणी पढ़ी-सुनी ही जाती थी, अब उसका महान रूप प्रकट हो गया है, वह रूप जो 'सतिगुरि सबदि उजारो दीपा' के सम्बन्ध में हम पीछे दिखा ही आये हैं। यह 'शब्द' का प्रभावशाली महान रूप है, यह ब्रह्म का ही अपना आप है और यह बताया जा रहा है उन योगियों को जो 'शब्द' का प्रयोग नाद के लिए ही करते थे। 'गुपती बाणी' का दूसरा भाव यह भी है कि यही वाणी कभी-कभी महापुरुषों के अन्दर उतरती है-'घड़ीऐ सबदु सची टकसाल॥', जब उन्हें ज्ञान की आँखों से असलियतें प्रकट हो गयी होती हैं, वे असलियतें जो आम आँखों से दिखाई नहीं देती थीं।

'हे नानक, अब योगी सच को झूठ से अलग कर लेता है (और ठीक राह पर भी आ जाता है।)' (पृ. 115-117)

28. "पिछले अनुभव से ऐसा दिखाई देता है कि उन्होंने गुरुमत का पीछा नहीं छोड़ना, क्योंकि उनके पास गुरुवाणी के सिवाय और

तो कुछ है ही नहीं, गद्दी कैसे बना कर रखें? अब तो बल्कि 'सरम धरम दुइ छपि खलोए' (आदि ग्रन्थ, पृ. 722) वाली बात हो गयी है।" (पृ. 121)

29. "कबीर साहिब की वाणी गुरु ग्रन्थ साहिब में चढ़ा दी गयी थी। उस वाणी में कुछ ऐसे शब्द भी थे जो योग साधना से सम्बन्ध रखते थे, पर क्योंकि उन्होंने नाम वाणी की सर्वोत्तम (शिरोमणि) जाप-साधना को अपना लिया था, वे गुरु जी की नज़रों में परवान चढ़े थे। उदाहरणत: जब कोई साधक निचले आपे से उठकर ज्योति स्वरूप आपे में पहुँच सका हो और इस कारण अनहद शब्द बजा हो तो यह शब्द महान हो जाता था। गुरु साहिब ऐसे शब्द को स्वयं भी सुनना चाहते थे, जो आत्मा के परमात्मा से मेल से पैदा हुआ हो और नाम वाणी के अभ्यास, गुरुमुख के मेल और सत्संग के प्रताप से प्राप्त हुआ हो। फिर यह मोक्षदाता होता है, इसके बजने से भ्रम-भय नष्ट हो गये होते हैं, हौंमैं के टंटे टूट ही गये होते हैं:

"अनहद वाजे भ्रमु भउ भाजै॥ सगल बिआपि रहिआ प्रभु छाजै॥"

मारू महला 1, पृ. 123

30. "यह नाम नाद भी उपजा सकता है, जैसे 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥' में दिखा दिया गया है: यह नाद सिमरन द्वारा उत्पन्न हुआ है, सुरत की ऊँची, गहरी एकाग्रता से उपजा है, यह रहस्यमय आनन्द का सूचक है, इसका राधास्वामियों की साधना से कोई सम्बन्ध नहीं।" (पृ. 124)

31. "राधास्वामी मित्रो, आप केवल लफ़्ज़ 'शब्द' को सहारा बनाकर गुरुमत को बिगाड़ने का यत्न न करो। याद रखो कि अगर योगियों का नाद गुरु जी को स्वीकार नहीं था तो तुम्हारा नाद भी स्वीकार नहीं हो सकता।" (पृ. 125)

32. "राधास्वामियों के अनुसार, आत्मा और परमात्मा के बीच शब्द (अर्थात् नाद) आ खड़ा है, जिसके मुकाबले में आत्मा निरी सुरत की जगह लेकर छोटी-सी कर दी गयी है, क्योंकि समुद्र तो परमात्मा है, शब्द (नाद) उसकी एक लहर है और आत्मा केवल एक बूँद जैसी हो गयी है। अब 'सुरत-शब्द योग' के स्थान पर एक तरह 'आत्मा-शब्द योग' कर लिया गया है। पहले तो परमात्मा से आत्मा को जोड़ने का रास्ता ढूँढ़ा जाता था, अब आत्मा को नाद से ही जोड़ना पड़ गया है और परमात्मा पीछे आना है जब नाद-लहर ने आत्मा को साथ लेकर वहाँ पहुँचना है (और आज के 'सतगुरु' बाबा चरन सिंह ने भी साथ ही जाना है) क्या यह सब गड़बड़-घोटाला नहीं हो गया? क्या गुरु ग्रन्थ साहिब की शिक्षा नये रूप में दिखाई नहीं जा रही?" (पृ. 147)

33. "उन्होंने (गुरु अंगद देव जी ने) ही सुरत-शब्द की नींव रखी। 'नींव रखी' से ही साफ़ हो जाना चाहिये कि यह नींव योग-मार्ग के 'सुरत-शब्द' की नहीं थी, क्योंकि वह तो आगे लम्बा समय पहले की रखी गयी थी। सो गुरु अंगद देव जी ने सिक्खी धारणा के 'सुरत शब्द' की नींव ही रखी थी, जिसे गुरु नानक देव जी ने आप अपने जीवन में प्रयुक्त करके दिखाया हुआ था, और जिसे नाम-मार्ग, भक्ति-मार्ग कहा जाता था।" (पृ. 150)

"अब *'सन्तमत विचार'* के पृ. 405 (हिन्दी संस्करण पृ. 408) पर दिये गए गुर-प्रसाद के अर्थों की ओर भी देखो जहाँ यों लिखा मिलता है: 'गुरु नानक ने 'जपजी' के आरम्भ में आये 'मूल-मन्त्र' में परमपिता परमात्मा को सतगुरु का प्रसाद कहा है। प्रसाद पूरी तरह प्रसाद-दाता की इच्छा पर निर्भर होता है। यह प्रसाद-दाता की कृपापूर्ण प्रसन्नता का सूचक होता है। इसका सम्बन्ध प्रसाद लेनेवाले के गुण, कर्म, स्वभाव के बजाय प्रसाद देनेवाले की मौज या दयालुता से होता है। प्रसाद न मोल मिलता है और न ही इसका मूल्य लगाया जा सकता है।' (आगे पृष्ठ 406

पर यह भी है:) 'पूर्ण सन्त आपनी मौज में किसी जीव को लोक-परलोक की हर दात बख़्शने के समर्थ होते हैं।''

"*टिप्पणी:* इस प्रकार के ख़याल देनेवालों को कोई क्या कहे? 'गुर प्रसाद' के अर्थ तो इनको आते ही नहीं हैं, क्योंकि इनके पल्ले 'गुरुवाणी व्याकरण' की ज़रा सी सूझ भी नहीं है। इनको मानों खुली छुट्टी है कि जो जी में आये लगे सुनाने, अपनी मौज में। इन पर किसी प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं है और न यह पाबन्दी लगवाने के लिए ही तैयार हैं। 'गुर प्रसाद' का अर्थ गुरुवाणी व्याकरण के अनुसार 'गुरु की कृपा से' बनता है। सारे मूल-मन्त्र के संक्षिप्त अर्थ यों बनेंगे: "वह निर्गुण-सर्गुण परमात्मा, जिसका नाम 'सत्य' है, जो कर्तापुरुष है, निर्भय, निरवैर है, अकाल मूर्ति है, अयोनि है, सैभं है, वह गुरु की कृपा से ही मिलता है।" हाँ, इस कृपा के लिए पहले योग्यता प्राप्त करनी होती है, उसकी कृपा ऐसे ही बातों से नहीं हो जाती। पर इन पातशाह लोगों को कौन समझाये? इन्होंने तो अपने 'सतगुरु' की महिमा किये जानी है, चाहे कैसे भी हो और चाहे इस 'सतगुरु' को गुरुमत का कुछ भी पता न हो। हमने पिछले ट्रैक्ट में सिद्ध भी किया था कि इस 'सतगुरु' को तो पहली, दूसरी श्रेणी के बच्चों जितनी भी गुरुमुखी अक्षरों की जान-पहचान नहीं है और सारा गुरु ग्रन्थ साहिब गुरुमुखी लिपि में ही दिया गया है। फिर बताओ, यह 'सतगुरु' गुरुमत को कैसे समझ सकेगा? गुरु नानक देव जी ठीक ही कहते हैं:

अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधर जाणै॥
आपि मुसै पति होछीऐ किउ राहु पछाणै॥

सूही महला1

"इस तथाकथित 'सतगुरु' को तो गुरुमत का ठीक रास्ता स्वयं भी पता नहीं पर देखो कुदरत के रंग कि वह गुरुमत का

पीछा भी नहीं छोड़ता, चाहे कितनी पुकार करते रहो।"

(पृ. 183-84)

'*राधास्वामी बाबेयाँ दे काले लेख*' पुस्तक के अन्तिम अध्याय में लेखक ने गुरु के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। यह अध्याय नीचे पूरा दिया जा रहा है:

'सिक्खी अन्दर गुरु संकल्प'

ऊपर हम जो भी उलटा-सीधा होता देख चुके हैं, इससे साफ़ प्रकट होता है कि हमें गुरु-संकल्प के बारे सिक्खी का दृष्टिकोण एक बार यहाँ फिर संक्षेप रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, क्योंकि बावजूद इस बात के कि हमने पिछले ट्रैक्ट में गुरु-सिद्धान्त की खोलकर व्याख्या की थी और राधास्वामियों के गुरु-संकल्प से मुकाबला करके दोनों में अधिक अन्तर दिखाया था, फिर भी उनकी ओर से इस नई छपी पुस्तक* में पहले से भी अधिक दु:खदायक ढंग से प्रचार हो रहा है।

गुरु नानक साहिब जब संसार में आये थे तो उस समय भारतीय परम्परा में गुरु-सिद्धान्त पहले ही चालू हो चुका था। वेदों-शास्त्रों और अन्य धर्म-ग्रन्थों में इसका खुला वर्णन बड़े स्पष्ट शब्दों में और गहरी आदर भावना सहित किया जाता था। उदाहरणत: श्री राम जी की एक हिदायत रामायण में यों मिलती है:

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।

अर्थात्, 'गुरु के बिना कोई भी संसार-सागर तर नहीं सकता।'

और

---

* लेखक का संकेत राधास्वामी सत्संग ब्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक '*संतमत विचार*' की ओर है।

बिन गुर होइ कि ग्यान
ग्यान कि होइ बिराग बिनु।

अर्थात्, 'गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के लिए बैराग की भी ज़रूरत होती है।'

पर गुरु साहिब चालू सिद्धान्तों के बावजूद, अपने बुनियादी सिद्धान्त कभी भी जल्दी से नहीं बनाते थे। इसलिए, वे अपने आपको भी एक साधारण मनुष्य के रूप से अधिक, दुनिया के सामने पेश नहीं करते थे। तब वे अपने अन्दर से रोशनी प्राप्त करने के यत्नों में रहते थे और एक सेवक के रूप में विचरते थे। पर जैसे-जैसे संसार के लोगों तक उनकी महान तस्वीर उभर कर सामने आती गयी, संसार की ओर से गुरु जी को गुरु-पद से बड़ाई मिलनी शुरू हो गयी, क्योंकि उस समय और कोई तरीक़ा ही नहीं था, किसी महापुरुष की शोभा प्रकट करने का। गुरु जी के अपने मन की तस्वीर तब यह थी:

अपरंपर पारब्रहमु परमेसरु नानक गुरु मिलिआ सोई जीउ॥
सोरठा म:1

खैर, उनके ही दो शब्द हम और यहाँ देते हैं, जो उनके मन की समय-समय की बदलती दशा को दिखाते हैं। पहला शब्द यह है:

गुर कै सबदि तरे मुनि केते इंद्रादिक ब्रहमादि तरे॥
सनक सनंदन तपसी जन केते गुर परसादी पारि परे॥
भवजलु बिनु सबदे किउ तरीऐ॥
नाम बिना जगु रोगि बिआपिआ दुबिधा डुबि डुबि मरीऐ॥
गुरु देवा गुरु अलख अभेवा त्रिभवण सोझी गुर की सेवा॥

आपै दाति करी गुरि दाते पाइआ अलख अभेवा॥
मनु राजा मनु मन ते मानिआ मनसा मनह समाई॥
मनु जोगी मनु बिनसि बिओगी मनु समझै गुण गाई॥
गुर ते मन मारिआ सबदु वीचारिआ ते विरेलै संसारा॥
नानक साहिब भरिपुरि लीणा साचि सबदि निसतारा॥

भैरउ, म:1

अर्थात्, "कई मौनी, कई इन्द्र आदि, ब्रह्मा आदि, गुरु के शब्द द्वारा तर गये थे। सनक, सनन्दन (ब्रह्मा के पुत्र) और कई तपस्वी जन गुरु की कृपा से ही पार हुए थे। पर बताओ, कैसे कभी कोई शब्द-गुरु के बिना संसार-सागर से पार हुआ है? बल्कि सारा संसार द्वैत-भाव के कारण डूबकर मरता रहा है और नाम के बिना रोगों में ग्रस्त रहा है। गुरु देवता है, गुरु अलख है, उसका अपना भेद भी नहीं मिलता पर तीनों भवनों की समझ गुरु की सेवा (गुरु की ताबेदारी) में होकर हो जाती है। गुरु दाते ने आप ही मेहर की दात करके अपने सेवकों को अलख अभेद हरि की प्राप्ति करवा दी है। यह मन (भोगों को भोगनेवाला) राजा है, पर इस मन को गुरु के परिचय द्वारा मन में से ही सन्तोष मिल जाता है और मन की सारी इच्छाएँ मन के अन्दर ही ख़त्म हो जाती हैं। वह मन जो हरि से टूट कर नष्ट हो रहा था, अब योगी हो गया है, भाव हरि से जुड़ गया है। पर फिर भी देखो मित्रो, नाम द्वारा हरि के गुण ग्रहण करने से जिन्होंने अपने मन की दौड़ को मार लिया होता है, वे जगत में बिरले ही होते हैं और जो हो जाते हैं, हरि-मालिक उनको सब जगह भरपूर होकर दिखाई देने लगता है और उनका पार उतारा भी सच्चे शब्द द्वारा हो जाता है।"

गुरु जी के मन में यहाँ शख़्सी-गुरु, शब्द-गुरु और हरि-गुरु तीनों ही अधिक या कम मात्रा में दिखाई दे रहे हैं।

दूसरा शब्द यह है:

कउण तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा॥
कउणु गुरू कै पहि दीखिआ लेवा कै पहि मुलु करावा॥
मेरे लाल जीउ तेरा अंतु न जाणा॥
तूं जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा तूं आपे सरब समाणा॥
मनु तराजी चितु तुला तेरी सेव सराफु कमावा॥
घट ही भीतरि सो सहु तोली इन बिधि चितु रहावा॥
आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा॥
आपे देखै आपे बूझै आपे है वणजारा॥
अंधुला नीच जाति परदेसी खिनु आवै तिलु जावै॥
ता की संगति नानक रहदा किउ करि मूड़ा पावै॥

सूही म:1

अर्थात्, "कौन-सा तराज़ू प्रयोग करूँ, कौन-सा तोल (बाट) लूँ और किस सराफ़ को बुलाऊँ? किस गुरु से और क्या शिक्षा मैं लूँ और किससे तुम्हारा मूल्य डलवाऊँ? हे मेरे प्यारे हरि, मैं तेरा अन्त नहीं पा सकता, हालाँकि तू जल, धरती और अन्तरिक्ष में हर स्थान पर परिपूर्ण हो रहा है, तू स्वयं ही सब जगह (मेरे अन्दर भी) व्यापक हो रहा है। (हरएक ने अपने अन्दर ही तुझे देखना और तेरा मूल्य डालना है। गुरु, शिक्षक, पीर, अवतार मार्ग अवश्य दिखाते हैं और प्रेरणा भी देते हैं। पर यत्न सबने आप (स्वयं) ही करना है, अन्दर बैठे सदा गुरु के दर्शनों के लिए और अपने-अपने जीवन को सही सीध में रखकर चलने के लिए)।

मैं अपने मन को तराज़ू बनाऊँ, चित्त को तोल (बाट) बनाऊँ और तेरी ही सेवा में तेरे कामों में लग कर, मानों सराफ़ बुलाऊँ। अपने ही हृदय में हे प्यारे, मैं तुझे परखूँ, तोलूँ ताकि

इस प्रकार अपने चित्त को टिका कर रख लूँ और सही तोल कर सकूँ। वह मेरा प्यारा हरि आप ही तराज़ू की मानों सूई है, आप ही तोल है, आप ही तराज़ू है और आप ही तोलनहार है (इस तरह वह आप ही गुरु-सराफ़ है), आप ही देखने वाला, आप ही उचित समझ वाला है, आप ही व्यापारी है। इसलिए हरि के द्वारा ही हरि को तोला जाना है (हरि का मूल्य आँका जाना है) अतुल, अभूल और सम्पूर्ण अगुआई हरि से ही लेनी है। पर देखो, मेरा मन तो अज्ञानी है, नीची जाति वाला है (नीच अस्तित्व वाला है) और मेरे लिए इस तरह पराया हो गया है। यह तो एक क्षण भी टिककर नहीं बैठता। बताओ, यह कैसे मेरे हरि की प्राप्ति करे? न करने योग्य (तेरी अगुआई प्राप्त करने के लिए पहले तुझे) प्राप्त करना होगा, पर तू बेअन्त है, इस छोर और उस छोर रहित है, मन, वाणी इन्द्रियों का विषय भी नहीं है। फिर बताओ, तेरा अन्त हिसाब मैं कैसे पाऊँ?" हम देख सकते हैं कि गुरु साहिब का मन उस समय कैसे सोचता था? वे केवल करतार को ही अभूल गुरु स्वीकार करते थे। जब वे योगियों से मिले थे तो उन्हें भी उन्होंने हरि-गुरु का सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट किया था: 'आप नाथ नाथी सभ जाकी' अर्थात् 'नाथ (मालिक) उस हरि को समझना चाहिये, जिसने सारे संसार को अपने हुक्म के अन्दर रखा हुआ है।' सिद्ध-गुरु के रूप में भी यही विचार गुरु जी की ओर से इस प्रकार प्रकट किया गया था:

सिध साधिक जोगी अर जंगम एक सिधु जिनी धिआइआ॥

भाव यह है कि गुरु साहिब हरि-गुरु के सिद्धान्त को ही पहल देते थे। पर इस मन की हालत में ही वे पूर्ण ज्ञान को भी, जितना अधिक से अधिक रूप में किसी महापुरुष के अन्दर उतर सका है, महान गिनते थे, क्योंकि यह मनुष्य की

मजबूरी है कि हरि-गुरु तक हरएक की सीधी पहुँच नहीं हो सकती और इसलिए शख़्सी-गुरु की आवश्यकता पड़ती है। जब किसी महान शख़्सीयत के अन्दर हरि-गुरु आप प्रकाशवान हो जाता है तब ही वह गुरु-पद की योग्यता प्राप्त करता है। इसी तरह ही गुरुओं में शब्द उतरता है, वाणी उतरती है, एक तरह परमात्मा ही उतरता है। यही शख़्सी-गुरु और शब्द-गुरु का मिला-जुला सिद्धान्त हो जाता है। गुरु साहिब (भाई गुरुदास जी के अनुसार) स्वयं कहते थे: '*गुरसंगति बाणी बिना दूजी ओट नहीं है राई॥*' वाणी को ही गुरु-शब्द हो जाना था और गुरु-संगत ने शख़्सी-गुरु का रूप ले लेना था, जैसे दशम् पातशाह ने अपने समय ऐसे कहा था:

खालसा मेरो रूप है खास॥ खालसे महि हउ करउ निवासु॥

गुरु नानक देव जी को केवल 70 साल की आयु ही प्राप्त हुई थी, जिसमें से अधिक समय वे देश-देशान्तर में ही फिरते रहे थे, संसार के उद्धार के लिए। पर उनका मन बन चुका था कि जैसे हरि-गुरु की प्राप्ति साधारण मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं, वैसे ही शख़्सी-गुरु की प्राप्ति हर समय सम्भव नहीं और इसे उसूल के तौर पर स्थायी नहीं बनाया जा सकता। विशुद्ध परमात्मा के रूप में कभी-कभी ही गुरु जन्म लेता है और परमात्मा के हुक्म में किसी महान कार्य के लिए ऐसे होता है। जब उनके देहान्त का समय आया तो उन्होंने अपने कार्य को आगे चलाए रखने के लिए गुरु अंगद जी को अपने स्थान पर बिठा दिया था। सते बलवंड ने अपनी वार में यही बात ऐसे कही थी:

नानक राजु चलाइआ सचु कोटि सताणी नीव दै॥
लहणे धरिओनु छतु सिरि करि सिफती अंम्रितु पीवदै॥

इसी वार में, गुरु अंगद जी के गुरु-पद प्राप्त करने के सम्बन्ध में इस प्रकार के वचन भी मिलते हैं:

जोति ओहा जुगति साए सहि काइआ फेरि पलटीऐ॥

अर्थात्, 'गुरु अंगद की ज्योति और युक्ति वही थी, जो गुरु नानक की थी, मालिक-नानक ने केवल शरीर ही बदल लिया था।' भाव यह है कि गुरु नानक देव जी ने केवल रूप ही बदला था, गुरु अंगद होकर। इसी प्रकार बाद में आये सारे गुरु साहिबान गुरु नानक के नाम पर ही बोलते थे और उनके चलाये हुए कार्यों को आगे चलाते जाते थे। इस विचार का सार यह हुआ कि गुरु एक ही था—गुरु नानक जो शख़्स और शब्द दोनों रूपों का एक ही समय प्रतिनिधित्व करता था। गुरु अमरदास जी ने इसी बात को ही इस प्रकार प्रस्तुत किया था:

एका बाणी एकु गुरु एको सबदु वीचारि॥
सोरठ महला 3

अर्थात्, वाणी एक है, (खसम की बाणी) एक है, यह एक हरि से उतरी है, गुरु एक है (गुरु नानक, क्योंकि बाकी गुरु, गुरु नानक होकर बोलते थे) सो उनका बोला हुआ शब्द, गुरु नानक का ही शब्द है, जिस पर विचार किये जाने की हिदायत है, क्योंकि:

सतिगुरू बाझहो होर कची है बाणी॥
रामकली महला 3

अब; एक और शब्द देने की भी आवश्यकता महसूस होती है, जो गुरु अर्जुन देव जी ने उच्चारण किया था और गुरु-पद सम्बन्धी उस समय का एक नमूना है, जब गुरु-पद, शख़्स और शब्द दोनों रूप, एक ही व्यक्तित्व में लीन हो चुका था:

गुरु मेरी पूजा गुरु गोबिंदु॥ गुरु मेरा पारब्रहमु गुरु भगवंतु॥
गुरु मेरा देउ अलख अभेउ॥ सरब पूज चरण गुर सेउ॥
गुरु बिनु अवरु नाही मै थाउ॥ अनदिनु जपउ गुरू गुरु नाउ॥
गुर मेरा गिआन गुरु रिदै धिआनु॥ गुरु गोपालु पुरखु भगवानु॥
गुर की सरणि रहउ कर जोरि॥ गुरू बिना मैं नाही होरु॥
गुरु बोहिथु तारे भव पारि॥ गुर सेवा जम ते छुटकारि॥
अंधकार महि गुर मंत्रु उजारा॥ गुर कै संगि सगल निसतारा॥
गुरु पूरा पाईऐ वडभागी॥ गुर की सेवा दूख न लागी॥
गुर का सबदु न मेटै कोइ॥ गुर नानकु नानकु हरि सोइ॥

गौंड महला 5, पृ.864-65

अर्थात्, "मैं गुरु की पूजा करता हूँ, क्योंकि मेरा गुरु गोबिन्द का रूप है। मेरा गुरु पारब्रह्म है और बड़े प्रताप वाला है। मेरा गुरु पूज्य देवता है, जो न समझ-गोचर है और न उसका भेद ही मिलता है (वह बहुत-बहुत महान है)। सभी के पूज्य, मेरे गुरु के मैं चरणों की सेवा करता हूँ, गुरु के बिना मेरा और कोई स्थान भी नहीं है। हर समय मैं इस गुरुओं के गुरु का नाम ही जपता रहता हूँ। मेरा गुरु ही मेरा ज्ञान है और गुरु का ही मेरे हृदय के अन्दर ध्यान रहता है। गुरु बड़े प्रताप वाला है, गोपाल (सृष्टि का पालनहार) पुरुष है। दोनों हाथ जोड़कर मैं गुरु की शरण में ही रहता हूँ। गुरु के बिना मेरा और कोई भी (सहारा) नहीं। मेरा गुरु जहाज़ है, जो संसार-सागर से पार कर देता है। गुरु की सेवा से यमदूतों के फन्दे से छुटकारा हो जाता है। संसार के अन्धेरे में मेरे गुरु का शब्द प्रकाश करता है। गुरु की संगति में सबका पार उतारा हो जाता है। पर ऐसा पूरा गुरु कभी भाग्य से ही मिल सकता है, जिसकी सेवा से सब दु:ख चले जाते हैं। इस गुरु का शब्द अमिट है, क्योंकि, गुरु है नानक, और नानक है परमात्मा स्वयं। यह शब्द-गुरु नानक द्वारा उतरा है और गुरु

नानक आप ही प्रभु है। सो यह शब्द परमात्मा का है, बल्कि यह परमात्मा ही है और इसलिए अमिट भी है।"

साफ़ तौर पर गुरु अर्जुन देव जी का ऊपर दिया शब्द, व्यक्ति और शब्द-गुरु, दोनों एक ही व्यक्तित्व में दिखाने के लिए है और गुरु नानक के हो रहे तजुर्बे की ही तरजमानी कर रहा है, इस फ़र्क़ से कि यह असीम श्रद्धा, प्यार और विश्वास में उच्चारण किया गया है। गुरु अर्जुन देव जी के गुरु, जिनसे उन्हें गद्दी पर बिराजमान किया गया था, गुरु राम दास जी थे। पर यहाँ वे अपना सतगुरु गुरु नानक को ही दिखा रहे थे, जो बाकी गुरुओं के भी गुरु थे और उन्हें गहरी आदर भावना में प्रभु ही कह गये थे, चाहे गुरु अर्जुन देव जी ने ही किसी और स्थान पर यों भी कहा हुआ था:

सो मुखु जलउ जितु कहहि ठाकुरु जोनी॥

अर्थात्, "वह मुख जल जाये जिससे तू, हे जीव, कहता है कि ठाकुर (परमात्मा) जन्म लेता है।' देखो मूल-मन्त्र में ही परमात्मा को अयोनि सैभं (जो जन्म नहीं लेता और अपने आपसे ही प्रकाशमान हुआ है) कहा गया है। सो, गुरु अर्जुन देव जी के उपरोक्त शब्द में दिखाये गुरु-पद के अक्षरी अर्थ नहीं लेने चाहिये। यह केवल गुरु अर्जुन देव जी की अपने सतगुरु, गुरु नानकदेव जी के लिए श्रद्धा भावना को ही प्रकट करते हैं या यों समझो कि गुरु नानकदेव जी अपने अन्दर परमात्मा बस जाने के कारण, वे परमात्मा के ही रूप हो गये दिखाई देते थे। यह हमें इसलिए विशेष रूप में कहना पड़ा है कि गुरु साहिब के उच्चारण किये गए शब्दों को सहारा बना कर राधास्वामी अपनी मरज़ी का प्रचार कर लेते हैं और अनजान सिक्खों को गुमराह करने में सफल भी हो जाते हैं। उनकी पुस्तकों और उनके डेरों में हो रहे प्रचार 'सतगुरु' को तो परमात्मा बना देते हैं पर गुरु-शब्द के

सिद्धान्त को घटिया सिद्ध करते रहते हैं। पीछे हम देख ही आये हैं कि गुरु-शब्द को वे बाहरी, आहत, वर्णात्मक, वाच आदि कहते हैं, यह बताने के लिए कि 'नाद' को ही परमेश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन समझना चाहिये। वे तो इस सीमा तक भी प्रचार करते हैं कि दशम् पातशाह ने गुरु-शब्द को गुरुआई ही नहीं दी थी। कोई पूछे कि इस तरह गुरुमत के बुनियादी सिद्धान्तों को घटिया सिद्ध करने का अधिकार उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ है? इस सम्बन्ध में इस 'सतगुरु' के मुकाबले में देखो सिक्ख धर्म के बानी सतगुरु नानकदेव जी कितने महान और कितनी विशाल नज़र वाले थे। वे सारे जगत के दु:ख निवृत्त करने के लिए, उस अन्धेरे और जहालत के समय भी अपने पाँवों के बल चलकर भारत के अतिरिक्त काबुल, ईरान, अरब, मिस्र, तिब्बत, बर्मा, सिलोन, अफ़गानिस्तान आदि स्थानों पर पहुँचे भी थे और सबको सत्य का मार्ग दिखाया था और परिणाम यह हुआ था कि हिन्दू, मुसलमान, योगी, तपस्वी, संन्यासी, बौद्धी आदि सारे ही उन्हें अपना समझते और आदर देते थे। नानक तपा, नानक पीर, नानक योगी, नानक हाजी, नानक गुरु आदि आदर और प्यार से भरे शब्दों से वे पुकारे जाते थे, चाहे वे जगह-जगह पड़ी भूलें भी ठीक करते थे। पर आज के तथाकथित 'सतगुरुओं' की ओर भी एक दृष्टि डालो जो अपनी ताकत बनाने की भूख में अन्धे हुए गुरु नानकदेव जी के चलाये मार्ग को ही ख़त्म करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं और हमारी पुकार को वे सुनते ही नहीं। हमें यह भी भूलना नहीं चाहिये कि सिक्ख गुरु साहिबान ठीक देहधारी रूप में ही आये थे और दस जामों में संसार की सेवा में लगे रहे थे। उनका इस प्रकार आना समय की आवश्यकता के अनुसार ही था, और समय का सन्देश भी देहधारी रूप में ही दिया जा सकता था। गुरु के देहधारी रूप को कौन काट सकता है? इस प्रकार करना इतिहास को ही काटना होगा। इसी कारण उनके कई

शब्द भी मिलते हैं, जो देहधारी रूप से सम्बन्धित बातों का वर्णन करते हैं, जिन्हें ये लोग अपनी ग़रज़ों के लिए खुलकर प्रयोग कर लेते हैं और कम जानकारी वाले सिक्ख आसानी से प्रभाव में आ जाते हैं। ये लोग देहधारी शब्द को पकड़कर बह जाते हैं और इससे सम्बन्धित और बातें भूल ही जाते हैं या छोड़ ही जाते हैं। याद रखो कि हरि-गुरु, देहधारी गुरु और शब्द-गुरु के सिद्धान्तों को सही रूप में समझे बिना गुरु-पद की सही कल्पना ही नहीं की जा सकती।" (पृ.185-196)

छठी पुस्तक

राधास्वामी सत्संग प्रकाश

लेखक: आचार्य आर्य नरेश

प्रकाशक: उद्गीथ साधना स्थली, हिमाचल।

1. गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है:

   'एक ओम् सत्नाम...'

   ईश्वर एक है और उसका सच्चा नाम 'ओम्' है, जिसे प्राचीन शास्त्रों, कवियों तथा योगियों ने पूर्ण मन्त्र कहा है। यह मन्त्र सबसे छोटा है परन्तु इसका प्रभाव सबसे बड़ा है। ओम् नाम ही संसार के सभी मन्दिरों तथा गुरुद्वारों में आज भी दिखाई देता है। ओम् की ही पूजा सभी देवताओं ने की थी। ...'ओम्' भगवान् निराकार, सर्वव्यापक तथा कण-कण में विद्यमान है। ...आज तक किसी भी ऋषि, गुरु या महात्मा ने 'ओम्' गुरुमन्त्र को कभी भी, किसी से छिपाया नहीं है, पर खेद का विषय है कि राधास्वामियों के गुरु नाम को लोगों से छिपाकर कान में सुनाने का नया अद्भुत धर्म-विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। जिस 'ओम्' नाम को देवताओं, ऋषियों तथा गुरुओं ने खुले रूप से किताबों में लिखा है, फिर भी उसको छिपाना वास्तव में उन महापुरुषों का

अपमान ही करना है। खेद है कि गुरुवाणी को राधास्वामी सत्संग के मंच से गाया तो जा रहा है पर उस पर चला नहीं जा रहा।

2. गुरुवाणी में लिखा है:

'एहा संध्या परवान है'

तथा

'तित घिउ होम जग सद पूजा'

इसके अनुसार प्रतिदिन वेद-मन्त्रों से अर्थपूर्वक ध्यान लगाने तथा मन को ठहराने व रोगों को हटाकर वातावरण को शुद्ध करने के लिए दैनिक हवन करने का भी विधान है। पर आज तक न तो गुरु सिंह साहब ने स्वयं ही संध्या-हवन किया है और न ही अपनी संगत को ही कभी करने का उपदेश दिया है। यह भी बड़ी भारी 'गुरुवाणी' की अवहेलना तथा जैसा कहना वैसा न करना होकर सत्संग को असत्संग बनाना है।

3. गुरुवाणी में लिखा है:

'केश धरे न मिले हरि पिआरे॥'

अर्थात्, लम्बे केश रखने से ईश्वर नहीं मिल जाता, और जहाँ बहुत गर्मी पड़ती है वहाँ केश बुद्धि को हानि भी पहुँचाते हैं। इसीलिए ड्राइवर तथा विशेष बुद्धिजीवी लोग केशों को कटवाते रहे हैं। ऐसा स्पष्ट होने पर भी क्या कारण है कि राधास्वामियों के गुरु तथा अन्य लोगों को केशों से प्यार है?

4. राधास्वामियों के गुरु महाराज किसी भी अन्धे तथा बहरे को अपना गुरुमन्त्र नहीं देते, क्योंकि वे आँखों के बिना गुरु को देख नहीं सकते और कानों के बिना गुरुमन्त्र को सुन नहीं सकते। क्या अन्धे तथा गूँगों को अपने पिता परमेश्वर के साथ मिलने का अधिकार नहीं?

5. बहुत प्रचार है इस बात का कि गुरु जी को सबकुछ पता है।... यदि वे वास्तव में ही इतने ज्ञानी हैं तो फिर पंजाब के कोने-कोने में हत्याओं को करके छिपे हुए लोगों को ही बता दें। ... अनेक लोग स्मग्लर, देश के मूल्यवान नक्शों को चुराने वाले गद्दार तथा राष्ट्रीय समझौतों में बिचौलिए बनकर कमिशन खाने वाले नेता बैठे हैं। गुरु जी भी इसी देश का अन्न, जल व वायु सेवन कर बड़े हुए हैं। ऐसे लोगों के रहस्य को खोलना उनका भी कर्तव्य है।
6. नाम देने के लोभ में गुरु जी को यह ज्ञान ही नहीं होता कि यह व्यक्ति ठीक उनके सामने सफ़ेद झूठ बोल रहा है।
7. हिमाचल हॉर्टिकल्चर विभाग में कार्यरत एक सरकारी अफ़सर, जोकि स्वयं धार्मिक है और जिसने राधास्वामी के ब्यास-आश्रम का वहाँ रह कर गहराई से सर्वेक्षण तथा निरीक्षण किया है, का यह कथन है कि इस बात में किंचित् भर मिलावट नहीं कि आश्रम में एक ही स्थान पर सब पुरुषों, स्त्रियों, युवक तथा युवतियों के सोने के कारण अनेक लोग पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं।
8. राधास्वामी मत ने स्थान-स्थान पर ब्यास आदि आश्रमों में दो-दो प्रकार के, अमीर तथा गरीब, विशेष तथा साधारण भोजन तथा विश्राम आदि की व्यवस्था करके धर्म तथा ईश्वर के स्थान को भी अमीरी-ग़रीबी, उच्चता-नीचता व असमानता आदि के धर्म-विरुद्ध व्यवहार से गहरी चोट पहुँचाई है जोकि लोगों में पक्षपात व हीनता तथा भेदभाव को पैदा करके और एक नवीन मत चलाकर प्राचीन संस्कृति के स्थान पर फूट को जन्म देकर भारत को बाँटने का भी मीठा ज़हर खिला रहा है, अत: बुद्धिजीवी लोग राधास्वामी मत का विशेष ध्यान रखें।
9. इनका आश्रम पंजाब जैसे अशान्त व आतंकित प्रान्त में है। फिर वहाँ आश्रम में अभी तक कोई गड़बड़ नहीं हुई... पुष्ट सूत्रों से अपुष्ट समाचार मिला है कि आश्रम की ओर से हर मास

निश्चित की गयी कुछ धनराशि आतंकवादियों को मिल जाती है, अत: आतंकवादी उन्हें कभी नहीं छेड़ते।

10. राधास्वामी लोगों के पास बहुत धन होने से वहाँ आश्रम में नित्य हज़ारों लोग भोजन करते हैं। वहाँ बहुत बड़ा हॉस्पिटल बन रहा है और यह भी किसी सीमा तक सत्य है कि राधास्वामी गुरु का चेला गरीब नहीं रहता। उन्हें धन भी दिया जाता है पर इस सारे वैभव के पीछे विदेशी धन का हाथ है। यह भी एक अपुष्ट समाचार से विदित हुआ है।

11. हमने स्वयं राधास्वामी, गुरु चानन सिंह जी* से कान में मन्त्र लेकर चेले बने हुए अनेक लोग देखे हैं जो सिगरेट, शराब, मांस तथा अण्डे का सेवन करते हैं, पर समाज से थोड़ा-सा अलग होकर। और सच्चाई तो यह है कि जो ईश्वर के स्थान पर समाज के व्यक्तियों से डरता है, वही बड़ा नास्तिक है।

12. यह निर्विवाद सर्वसम्मत सत्य है कि जब से केशधारी सरदार चानन सिंह के राधास्वामी मत (जिसका भाषा-व्याकरण के अनुसार सत्य अर्थ भी प्रकट नहीं हुआ) की लहर चली है तब से ग्रामों, नगरों, मुहल्लों तथा दुकानों से भारतीय संस्कृति के विश्व-गौरव मर्यादा पुरुषोतम राम, योगिराज कृष्ण, जगद्गुरु महर्षि दयानन्द, वैदिक महापुरुषों, ऋषियों व अन्य संतों तथा गुरुओं के अच्छे-अच्छे ग्रन्थ तथा प्रेरणा देनेवाले चित्र सब समाप्त हो गये हैं।

सातवीं पुस्तक

राधास्वामी मत क्या है?
राधास्वामी मत की पुस्तकों के अनुसार
(बीस प्रश्न)

---

* लेखक का संकेत महाराज चरन सिंह जी की ओर है।

लेखक: हरविंदर सिंह
प्रकाशक: गुरुमत प्रचार सोसाइटी, तरनतारन।

प्रश्न 1. अगर सतगुरु का जूठा खाकर घट-घट के पर्दे खुल जाते हैं तो राधास्वामी भजन-अभ्यास का उपदेश क्यों देते हैं?

प्रश्न 2. क्या राधास्वामी की कुरली पीने से सेवक का कुल पार हो जायेगा?

प्रश्न 3. क्या राधास्वामी (सेठ शिवदयाल) पीकदान में से अपनी थूक और बलगम सेवकों को चटा देते थे?

महाराज चरन सिंह 'सन्त-मार्ग' के पृ.53 पर लिखते हैं कि ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों में महात्मा शब्द या नाम की महिमा लिखते हैं। इनको पढ़ने से समझ आती है कि हमने नाम की कमाई क्यों करनी है। इन्हें पढ़ने से मुक्ति नहीं मिलती, जो कुछ हम पढ़ते हैं उस पर अमल करने से मुक्ति मिलेगी।

इस पुस्तक के पृ.70 पर बाबा चरन सिंह ने लिखा है कि मुक्ति केवल देहधारी गुरु ही दे सकता है।

प्रश्न 4. बाबा चरन सिंह के कौन-से कथन को सत्य माना जाये। अगर वेद-शास्त्र पढ़कर और उन पर अमल करके मुक्ति मिल सकती है तो केवल देहधारी गुरु ही मुक्ति-दाता कैसे हुआ?

बाबा जगत सिंह द्वारा लिखी पुस्तक 'आत्म-ज्ञान' के पृ.63 पर लिखा है कि केवल देहधारी गुरु की सहायता से ही हम शरीर के नौ दरवाज़े खाली करके मन को दसवीं गली में खड़ा करके इसे नाम से जोड़ सकते हैं...। इसी पुस्तक के पृ.61 पर लिखा है कि जो लोग बिना (देहधारी) गुरु की हिदायत के भजन बन्दगी करते हैं, उन सबको उच्च मंज़िल का रास्ता कभी नहीं मिलता। वे चाहे समझते रहें कि हम रूहानी मार्ग पर चल रहे हैं पर वास्तव में वे अन्धेरी गलियों में ही ठोकरें खाते फिरते हैं। इनकी पुस्तकों में

ही जगह-जगह ज़िक्र है कि कबीर साहिब, दादू, पलटू दास, तुलसी, शम्स तब्रेज़ और मौलाना रूम ने (राधास्वामी अर्थों में) सन्तमत अपनाया। सावन सिंह भी ज़ोर देकर कहते हैं कि केवल देहधारी महात्मा ही जीव को शब्द से जोड़ सकता है। (पृ. 148)

प्रश्न 5. क्या राधास्वामी यह बता सकते हैं कि कबीर, दादू, पलटू, मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़ आदि ने कौन-कौन-सा देहधारी गुरु अपनाया? अगर उनका कोई देहधारी गुरु नहीं था तो क्या वे अन्धेरी गलियों में ही ठोकरें खाते रहे? इनके देहधारी गुरुओं के आगे देहधारी गुरु कौन थे? संसार का पहला देहधारी गुरु कौन था?

प्रश्न 6. राधास्वामी मत के बानी सेठ शिवदयाल का देहधारी गुरु कौन था? अगर सेठ शिवदयाल का कोई देहधारी गुरु नहीं था तो उपरोक्त कथनानुसार क्या स्वामी जी सारी उम्र अन्धेरे में ठोकरें खाते रहे?

राधास्वामी मत की पुस्तक 'परमार्थी पत्र, भाग2' के पृ. 148 पर बाबा सावन सिंह लिखते हैं कि सन्तों का असल उपदेश नेक जीवन व्यतीत करना, दान देना, मनुष्य मात्र की सेवा करना या और परोपकार करना नहीं है।

प्रश्न 7. अगर उपरोक्त कथन सत्य है तो राधास्वामी डेरों में बीमारियों के इलाज के लिए मुफ़्त कैम्प क्यों लगाये जाते हैं? डेरों में रिआयती दरों पर खाने-पीने की वस्तुएँ क्यों बेची जाती हैं। डेरा के लिए दान क्यों लिया जाता है? राधास्वामी सेवक डेरे में सेवा करके परोपकार क्यों करते हैं?

परमार्थी पत्र में ही लिखा है कि 'चोला त्याग चुके महात्मा से कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।' पृ.6 पर और लिखा है कि 'पूर्व समय में हो चुके

सन्त-महात्मा या उनकी वाणी रूहानी सफ़र तय करने में हमारी कोई सहायता नहीं कर सकती।'

प्रश्न 8. अगर यह सत्य है तो राधास्वामी अपने 'सत्संगों' में चोला त्याग चुके, पहले सन्त-महात्मा की वाणी या लेखों का सहारा क्यों लेते हैं और उनकी किताबें क्यों छपवाते हैं?

महाराज सावन सिंह अपने सतगुरु बाबा जैमल सिंह की बात सुनाते हुए 'परमार्थी पत्र, भाग2' के पृ.47 पर लिखते हैं कि अम्बाला के एक स्थानक मुखी व्यक्ति को नाम देने की सिफ़ारिश वहाँ की संगत ने की। पर बाबा जैमल सिंह न माने, बाबा जी कहने लगे कि इसकी जगह चाहे दर्जन और व्यक्तियों को नाम दिला दो पर इस व्यक्ति को मैंने नाम नहीं देना। सत्संगियों के ज़िद्द करने पर बाबा जैमल सिंह ने उस व्यक्ति को नाम तो दे दिया पर आप वापस उसी समय डेरा आ गये। डेरा आकर बाबा जैमल सिंह को दस दिन तेज़ बुखार और मरोड़ लगे रहे। बाबा जैमल सिंह के बचने की किसी को आशा न रही। बाबा सावन सिंह कहते हैं कि मैं भी वहाँ पहुँच गया। पूछने पर बाबा जैमल सिंह ने मुझे बताया कि अम्बाला जिस व्यक्ति को नाम दिया गया था उस व्यक्ति के कर्म बहुत कठोर थे।

प्रश्न 9. क्या किसी राधास्वामी सन्त की ओर से कठोर कर्मों वाले व्यक्ति को नाम दिये जाने के उपरान्त सन्त को इतने मरोड़ या टट्टियाँ लग जाती हैं कि उसके बचने की आशा ही नहीं रहती?

परमार्थी पत्र में और लिखा है कि ऊपरी मण्डलों में जानेवाले महात्मा औरत से परहेज़ करते हैं ताकि एकान्त में विघ्न न पड़े। (पृ.173)

प्रश्न 10. क्या ऐसा कहकर महाराज सावन सिंह औरत ज़ात को अपमानित नहीं कर रहे?

बाबा सावन सिंह ने 'परमार्थी पत्र, भाग2' पृ.61 पर लिखा है कि धर्मग्रंथों का पाठ शास्त्रों की कथा-वार्ता, बेनती, अरदास पानी बिलोने के समान है, पर बाबा जैमल सिंह ने भंडाला की संगत को लिखे पत्र में लिखा है कि जिस वक़्त ख़ाली हों, हुज़ूरी पोथी पढ़ा करो, क्योंकि संतों की वाणी, वचन, वाक्य सुनने से मन निर्मल होता है।

प्रश्न 11. बाबा जैमल सिंह या सावन सिंह दोनों में किसे ठीक माना जाये। अगर धर्म-ग्रन्थों का पाठ पानी बिलोना है तो राधास्वामी बाबेयाँ ने 'सारबचन' और अन्य पुस्तकें क्या पानी बिलोने के लिए लिखी हैं ?

राधास्वामियों की पुस्तक 'आत्म-ज्ञान' के पृ.226 पर लिखा है कि कष्ट, रोग, दु:ख, दर्द आदि जीव की सफ़ाई करनेवाले हैं। ये हमें अच्छा मनुष्य बनाते हैं। इसी कथन का समर्थन करते हुए पृ.226 पर लिखा है कि भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैं अपने प्रिय भक्तों को तीन उपहार देता हूँ—ग़रीबी, बीमारी और निरादर। महाराज सावन सिंह भी लिखते हैं कि बीमारी के समय प्रभु की विशेष कृपा होती है और शब्द-धुन और अधिक साफ़ हो जाती है। (पृ.60)

प्रश्न 12. राधास्वामी सतगुरु अपने शिष्यों को ग़रीबी, बीमारी और निरादर का उपहार क्यों नहीं देते?

प्रश्न 13. अगर बीमारी सचमुच उपहार है और प्रभु की विशेष कृपा के कारण है तो राधास्वामी बाबे लोगों के इलाज के लिए बड़े-बड़े अस्पताल बनाकर उनसे बीमारी का उपहार और प्रभु की विशेष कृपा क्यों छीन रहे हैं ?

प्रश्न 14. भला ये बहुमूल्य उपहार ग़रीबी, बीमारी और निरादर राधास्वामी मुखियों को क्यों नहीं मिले? क्या इन पर प्रभु की विशेष कृपा नहीं?

प्रश्न 15. बीमारी जैसी प्रभु की विशेष कृपा राधास्वामी बाबेयों पर क्यों नहीं हुई?

प्रश्न 16. अगर बीमार होने से मनुष्य प्रभु के अधिक निकट हो जाता है और शब्द-धुन साफ़ सुनाई देने लगती है तो यह अपने अस्पताल बन्द करके स्वस्थ लोगों को बीमार करने के लिए बीमारियाँ फैलाने के केन्द्र क्यों नहीं खोल देते ताकि अधिक लोगों पर प्रभु की विशेष कृपा हो जाये और वे शब्द-धुन साफ़-साफ़ सुन सकें?

'परमार्थी पत्र, भाग2' के पृ.39 पर लिखा है कि 'सतगुरु' पहले सत्संग द्वारा जीव का उद्धार करने की कोशिश करता है। अगर यह साधन असफल रहता है तो वह अपने सत्संगियों को ग़रीबी, दु:ख और बीमारी का साबुन लगाते हैं। अगर फिर भी काम न चले तो वे अपने शिष्य को दोबारा जन्म दे देते हैं। इसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि सतगुरु अभूल है। वह अन्दर या बाहर कभी ग़लती नहीं करता।

प्रश्न 17. अगर उपरोक्त कथन सत्य है तो राधास्वामियों के अभूल सतगुरु को यह पहले ही क्यों नहीं पता चल जाता कि उसके शिष्य का उद्धार सत्संग द्वारा होना है या बीमारी का साबुन लगाने से या उसे दोबारा जन्म देने से? उपरोक्त कथन का भाव यह नहीं कि राधास्वामी 'सतगुरु' अभूल नहीं बहुत भुल्लकड़ हैं?

'परमार्थी पत्र, भाग2' में लिखा है कि संतजन बहुत ही कोमल चित्त और दयालु स्वभाव के होते हैं। इसी प्रकार राधास्वामी साहित्य में स्थान-स्थान पर लिखा है कि जीवों को दु:ख न दें।

प्रश्न 18. राधास्वामी मत के बाबा जैमल सिंह बन्दूकें पकड़कर सेना में क्यों नौकरी करते रहे? क्या उन्हें अहिंसा प्रिय न थी? या उनका चित्त कोमल न था?

प्रश्न 19. महाराज सावन सिंह 1903ई. से लेकर 1948 तक डेरे की गद्दी पर रहे। इस समय के दौरान संसार के दो बड़े युद्ध हुए। हीरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम्ब फेंके जाने के कारण लाखों लोगों के जान और माल का नुक़सान हुआ। किसी जानवर पर ज़ुल्म करने से तो इनका मन दु:खी हो जाता है पर क्या कारण है कि बाबा सावन सिंह के लेखों में कहीं भी मनुष्य के कत्लेआम की निंदा नहीं की गयी?

प्रश्न 20. और तो और पिछले डेढ़ दशक में डेरा ब्यास के निकट क्षेत्र में झूठे, सच्चे पुलिस मुकाबले और हिंसा का नंगा नाच हुआ, पर जानवरों पर दया करनेवाले बाबेयों को मनुष्यों पर दया क्यों न आयी? वे इस हिंसा को चुपचाप तमाशबीन बनकर क्यों देखते रहे?

यू.के. के सिक्ख चैनल की टिप्पणियाँ

यू.के. के सिक्ख चैनल ने अपने ब्रॉडकास्ट में राधास्वामी संस्था के बारे में कई टिप्पणियाँ की हैं। क्योंकि आलोचक वही विषय बार-बार उठाते हैं इसी लिए कुछ टिप्पणियाँ इस पुस्तक में पहले ही प्रकाशित की जा चुकी हैं, बाक़ी टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

1. राधास्वामी ੧ओंकार का ग़लत अर्थ करते हैं। यह सबसे ऊँची आध्यात्मिक मंज़िल है जबकि राधास्वामी कहते हैं कि यह दूसरी आध्यात्मिक मंज़िल का नाम है।

2. राधास्वामी 'पंच सबद' का अर्थ सही नहीं करते। अपने गुरुओं द्वारा दिये गये सिमरन के पाँच शब्दों को राधास्वामी 'पंच सबद' कहते हैं, जबकि गुरु साहिबान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में समझाया है कि 'पंच सबद' मन के पाँच विकारों को वश में करते हैं। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै॥
घरि सभागे सबद बाजे कला जितु घरि धारीआ॥
पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे॥
कहै ननकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद बाजे॥

3. राधास्वामी संस्था गुरबानी का ग़लत अर्थ निकालते हैं। उदाहरण के तौर पर:

क) हथु न लाइ कुसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥

ख) जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ॥
राम नामु संतन घरि पाइआ॥
आदि ग्रन्थ पृ. 283

संतमत का सार

संतमत आत्मा को परमात्मा से मिलानेवाले रूहानी मार्ग का नाम है। पहले भी कहा जा चुका है कि यह किसी साधारण मनुष्य, संत या महात्मा का बनाया हुआ नहीं है। इसका सृजन स्वयं प्रभु ने किया है। संत इसका ज्ञान देते हैं और जीवों को इस पर चलने में सहायता प्रदान करते हैं। इसलिए इसे संतमत या गुरुमत कहा जाता है।

परमात्मा का हुक्म

संत-महात्मा समझाते हैं कि जगत परमात्मा की रचना है। यह उसके हुक्म की लीला है। रचना अपने कर्ता की रज़ा के अनुसार चल रही है। जीव उसके हुक्म द्वारा सतलोक से मृत्युलोक में उतरे हैं और उसकी रज़ा से ही वापस निज घर पहुँच सकते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

इकना हुकमी बखसीस इक हुकमी सदा भवाईअह॥[1]

अर्थात्, जीव प्रभु के हुक्म से ही आवागमन के चक्कर का भाग बनता है और उसके हुक्म से ही उसे प्रभु से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

सभ किछ हुकमे आवदा सभ किछ हुकमे जाए॥
जे को मूरख आपहो जाणै अंधा अंध कमाए॥[2]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

ना को मूरख ना को सिआणा॥ वरतै सभ किछ तेरा भाणा॥[3]

अर्थात्, न कोई अपनी बुद्धिमत्ता के कारण प्रभु के निकट है और न ही मूर्खता के कारण उससे दूर है। जो कुछ हो रहा है सब उसकी रज़ा के अनुसार हो रहा है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

धुर करम पाइआ तुध जिन कउ से नाम हर कै लागे॥[4]

अर्थात्, जिनके भाग्य में वह प्रभु स्वयं लिख देता है, केवल वे ही उसके नाम से जुड़कर उसमें विलीन होने की बड़ाई प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य

संतजन कहते हैं कि परमात्मा से मिलाप केवल मनुष्य-जन्म में ही संभव है, और किसी भी योनि में नहीं। मनुष्य-जन्म बड़े भाग्य से मिलता है। यह परमात्मा की प्राप्ति का अमूल्य अवसर है, इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। स्वामी जी महाराज का उपदेश है:

यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जन्म भटका जब खाया॥
अब या को बिरथा मत खोवो। चेतो छिन छिन भक्ति कमावो॥[5]

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

फरीदा चार गवाइआ हंढ कै चार गवाइआ संम॥
लेखा रब मंगेसीआ तू आंहो केर्हे कंम॥[6]

अर्थात्, यदि दिन के चार पहर सांसारिक भागदौड़ में और रात के चार पहर सोकर गवाँ दोगे तो अंत समय जब प्रभु पूछेगा कि तुम्हें भेजा किस कार्य के लिए था और तुम करते क्या रहे, तब क्या जवाब दोगे? गुरु अर्जुन देव जी चेतावनी देते हैं:

भई परापत मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥
संरजाम लाग भवजल तरन कै॥ जनम ब्रिथा जात रंग माइआ कै॥[7]

अर्थात्, मनुष्य-जन्म का दुर्लभ अवसर भवसागर को पार करके उस गोबिंद से मिलाप करने के लिए मिलता है, माया के झूठे धंधों के लिए नहीं।

पूर्ण संत समझाते हैं कि संसार अधूरा और नश्वर है, इसके सुख भी अधूरे और नश्वर हैं। परमात्मा पूर्ण और अविनाशी है। उसके मिलाप से ही पूर्ण और सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। वह प्रभु मनुष्य-जन्म का अमूल्य वरदान इंद्रियों के भोगों के लिए नहीं, अपने मिलाप के लिए प्रदान करता है, ताकि जीव आवागमन के बंधन तोड़कर वापस निज घर पहुँचकर हमेशा के लिए सुखी हो जाये। मनुष्य-जन्म का यही मूल उद्देश्य है। कबीर साहिब कहते हैं:

गुर सेवा ते भगति कमाई॥ तब इह मानस देही पाई॥
इस देही कउ सिमरह देव॥ सो देही भज हर की सेव॥
भजहो गोबिंद भूल मत जाहो॥ मानस जनम का एही लाहो॥[8]

परमात्मा का प्रेम

आत्मा और परमात्मा में प्रेम का स्वाभाविक रिश्ता है। इस क़ुदरती रिश्ते में क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति-पाँति, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, अमीर-ग़रीब, भले-बुरे आदि का भेद नहीं है। बात केवल इतनी है कि यह स्वाभाविक प्रेम संसार के मोह तथा कर्मों और संस्कारों के बोझ के नीचे दब गया है। संत-महात्मा समझाते हैं कि संसार का मोह आत्मा को संसार के साथ बाँधता है और परमात्मा का प्रेम इसे संसार के मोह से मुक्त करके परमात्मा से मिला देता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

मन रे किउ छूटह बिन पिआर॥
गुरमुख अंतर रव रहिआ बखसे भगति भंडार॥[9]

अर्थात्, प्रभुप्रेम के बिना संसार के प्रेम के बंधन नहीं टूट सकते। संत नामदेव जी कहते हैं:

नामे प्रीत नाराइण लागी॥ सहज सुभाए भइओ बैरागी॥[10]

जब आत्मा में प्रभु की प्रीति प्रबल हो जाती है तो स्वयं ही मनुष्य के अंतर में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। संतमत में परमात्मा के प्रेम द्वारा परमात्मा की प्राप्ति पर ज़ोर दिया जाता है। इसलिए इसे प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग भी कहा जाता है। स्वामी जी महाराज कहते हैं:

भक्ति महातम सुन मेरे भाई। सब संतन ने किया बखान॥
यही मता गुरु-मत पहिचानो। और मते सब झूठ भुलान॥...
भक्ति इश्क़ प्रेम ये तीनों। नाम भेद है रूप समान॥
भक्ति भाव यह गुरु-मत जानो। और मते सब मन मत ठान॥[11]

सच्ची भक्ति

हमारी आत्मा परमात्मा का अंश है, उस सतनाम-समुद्र की बूँद है। अपने असल से बिछुड़कर इस संसार में आकर यह निरंतर दु:ख उठा रही है। मन के अधीन होकर यह इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों में लिप्त होकर अनेक कर्म करती है जिनका फल भोगने के लिए यह आवागमन के चक्कर में फँसी रहती है। परंतु परमात्मा का अंश होने के कारण इसके अंदर परमात्मा से मिलने के लिए क़ुदरती तड़प भी सदा बनी रहती है। हम सब अपने-अपने ढंग से परमात्मा की भक्ति करने की कोशिश करते हैं। हम चाहते हैं कि अधिक से अधिक पुण्य करें ताकि हमारे पाप नष्ट हो जायें और हमारा ईश्वर से मिलाप हो जाये। हम जप-तप, पूजा-पाठ,

तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य, ग्रंथ-शास्त्रों के पठन-पाठन आदि जैसे बहिर्मुखी साधनों द्वारा प्रभु-प्राप्ति का यत्न करते हैं। संतजन सावधान करते हैं कि पुण्य, पुण्यों के खाते में और पाप, पापों के खाते में जमा हो जाते हैं। इनके भुगतान के लिए जीव को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। दोनों प्रकार के कर्म बंधनकारी हैं। कर्म, कर्म का नाश नहीं कर सकता। कर्म का नाश परमात्मा की भक्ति करती है।

दूसरी चेतावनी संत यह देते हैं, '*हर साचे भावै सा पूजा होवै... ॥*'[12] अर्थात्, मन और बुद्धि द्वारा की गयी भक्ति प्रभु से नहीं मिला सकती। केवल वह भक्ति उससे मिला सकती है जो उसे मंज़ूर है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

पूजा करै सभ लोक संतहो मनमुख थाए न पाई॥
सबद मरै मन निरमल संतहो एह पूजा थाए पाई॥[13]

अर्थात्, मन मरज़ी की भक्ति से न कर्मों का बोझ दूर हो सकता है और न ही आत्मा अपने निज घर पहुँच सकती है। केवल शब्द या नाम की कमाई द्वारा ही मन निर्मल होता है और आत्मा परमात्मा से मिलाप कर सकती है। आप कहते हैं, '*पूजा करह पर बिध नही जाणह दूजै भाए मल लाई॥*'[14] अर्थात्, जब तक पूजा के सच्चे साधन और मार्ग का ज्ञान नहीं होता, कर्मों का बोझ बढ़ता ही जाता है। आप सावधान करते हैं:

बिन नावै होर पूज न होवी भरम भुली लोकाई॥[15]

अर्थात्, शब्द या नाम की कमाई के सिवाय परमात्मा की और कोई भक्ति ही नहीं है, लोग व्यर्थ ही भ्रमों में अपना समय बरबाद कर रहे हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

कबीर महिमा नाम की, कहना कही न जाय।
चार मुक्ति औ चार फल, और परम पद पाय॥[16]

संत नामदेव जी कहते हैं:

भनत नामदेउ इक नाम निसतारै॥[17]

गुरु रविदास जी फ़रमाते हैं:

नाना खिआन पुरान बेद बिध चउतीस अखर मांही॥
बिआस बिचार कहिओ परमारथ राम नाम सर नाही॥[18]

अर्थात्, वेद, पुराण आदि सब धर्मग्रंथों के ज्ञान का वर्णमाला के चौंतीस अक्षरों में वर्णन किया जा सकता है, किंतु वेद व्यास जी ने खोज-विचार कर निर्णय किया है कि राम-नाम के सिमरन के समान और कोई साधन नहीं। संत पलटू साहिब कहते हैं:

जप तप तीरथ बर्त है, जोगी जोग अचार।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार॥[19]

संत चरनदास जी फ़रमाते हैं:

करै तपस्या नाम बिन, जोग जज्ञ अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं, सब हीं थोथे जान॥[20]

नाम

जिस नाम को संत-महात्माओं ने मुक्ति की प्राप्ति और परमात्मा से मिलाप का एकमात्र साधन माना है, वह नाम क्या है? वह नाम कहाँ है और वह नाम कैसे मिल सकता है? कबीर साहिब की वाणी है:

कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय॥[21]

अर्थात्, मुक्ति देनेवाला नाम अनादि है और उसके जाप की युक्ति गुप्त है। उस नाम और उसके जाप की युक्ति का किसी बिरले को ज्ञान होता है। गुरु साहिब की वाणी है:

इस जग मह नाम अलभ है गुरमुख वसै मन आए॥[22]

गुपता नाम वरतै विच कलजुग घट घट हर भरपूर रहिआ॥
नाम रतन तिना हिरदै प्रगटिआ जो गुर सरणाई भज पइआ॥[23]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

सगल नाम निधान तिन पाइआ अनहद सबद मन वाजंगा॥
किरतम नाम कथे तेरे जिहबा॥ सत नाम तेरा परा पूरबला॥[24]

'परा पूरबला' अर्थात्, सच्चा नाम रचना से पहले का है। यह कृत्रिम नहीं, अकृत्रिम है। यह अपने आप में, आप है। यह जिह्वा से बोला जानेवाला, कानों से सुना जानेवाला और किसी विशेष भाषा में लिखा जानेवाला नाम नहीं। यह नाम अनहद है, इसका कोई आदि और अंत नहीं और यह अनहद शब्द के रूप में अंतर में बजता सुनाई देता है। गुरबानी में आता है:

नामै ही ते सभ किछ होआ बिन सतगुर नाम न जापै॥[25]

जेता कीता तेता नाउ॥ विण नावै नाही को थाउ[26]

सभ नावहो उपजै नावहो छीजै॥[27]

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥[28]

अर्थात्, सृष्टि की रचना और उसका संहार भी नाम के द्वारा होता है। सृष्टि नाम के सहारे ही खड़ी है। केवल जड़ रचना ही नहीं, संपूर्ण प्राणधारी रचना भी नाम के सहारे क़ायम है। नाम सर्वव्यापक है, पर इसका ज्ञान संत-सतगुरु से मिलता है। वाणी के एक प्रसंग में आता है:

घर घर नाम निरंजना सो ठाकुर मेरा॥[29]

अर्थात्, नाम और निरंजन (परमात्मा) एक हैं। यह कहना कि परमात्मा हमारा सच्चा इष्ट, स्वामी और मालिक है और यह कहना कि

नाम हमारा सच्चा इष्ट, स्वामी और ठाकुर है, कोई भेद नहीं है। ये दोनों एक ही सत्य का वर्णन करने के दो अलग-अलग ढंग हैं। स्पष्ट है कि जिस नाम को संतों ने मुक्तिदाता माना है, वह परमात्मा की अद्‌भुत शक्ति है और परमात्मा से अभेद है।

महात्मा समझाते हैं कि परमात्मा भी हमारे अंतर में है और परमात्मा से मिलानेवाला शब्द या नाम भी अंतर में है। गुरु साहिब कहते हैं:

नउ निध अंम्रित प्रभ का नाम॥ देही मह इस का बिस्राम॥[30]

अर्थात्, नाम ही सृजनहार परमेश्वर है, नाम ही सच्चा ठाकुर या इष्ट है और नाम ही सच्चा अमृत है। यह नाम घट-घट में व्याप्त है। गुरु साहिब चेतावनी देते हैं:

सरीरहो भालण को बाहर जाए॥
नाम न लहै बहुत वेगार दुख पाए॥[31]

नाम के दो भेद

संत-महात्माओं ने परमात्मा के गुणों के आधार पर उसके अनेक नाम रखे हैं, परंतु अंतर में ध्वनि के रूप में मिलनेवाले नाम को सच्चा नाम, निज नाम, अनादि नाम, नि:अक्षर नाम, ज़ाती नाम या धुनात्मक नाम कहा है। परमात्मा के गुणों के आधार पर रखे गए सिफ़ाती, गुणवाचक या वर्णात्मक नाम हैं, परंतु अंतर में प्राप्त होनेवाला धुनात्मक नाम एक है। सिफ़ाती या वर्णात्मक नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं, परंतु धुनात्मक नाम का आत्मा को समाधि की अवस्था में अनुभव होता है। वर्णात्मक नाम इंद्रियों तक सीमित हैं, धुनात्मक नाम इंद्रियों से ऊपर है। वर्णात्मक नाम समय, स्थान और काल के अधीन हैं, धुनात्मक नाम सर्वव्यापक और अविनाशी है। गुणवाचक या वर्णात्मक नाम मनुष्य-कृत हैं, धुनात्मक नाम प्रभु का निज रूप है। वर्णात्मक नाम नामी की महिमा करते हैं, जबकि धुनात्मक नाम स्वयं वह नामी है। वर्णात्मक नाम साधन हैं, धुनात्मक नाम साध्य है।

संसार के सभी संत-महात्माओं ने समय-समय पर अपने-अपने ढंग से इस एक सच्चे नाम की महिमा की है। भारतीय संतों ने इसे शब्द, अनहद शब्द, अनहद नाद, अनहद वाणी, आकाशवाणी आदि नाम दिये हैं। सूफ़ी फ़क़ीरों ने इसे कलमा, कलाम, इस्मे-आज़म, निदाए-सुल्तानी, बाँगे-आस्मानी, बाँगे-इलाही आदि नामों से पुकारा है। हज़रत ईसा ने इसे वर्ड (Word), लॉगॉस (Logos), होली घोस्ट (Holy Ghost) तथा होली स्पिरिट (Holy Spirit) और चीनी महात्माओं ने इसे ताओ (Tao) कहा है। यह शब्द या नाम ही प्रभु की सृजनात्मक शक्ति है। इसके आधार पर ही सब खंड-ब्रह्मांड खड़े हैं। यह नाम जीव और प्रभु के मध्य एक पुल का काम करता है। यह सतलोक से आ रही परम चेतन शक्ति की वह सूक्ष्म धारा है जो जीव को अपने साथ वापस सतलोक ले जा सकती है। यह सृष्टि का सृजन करती है, इसलिए संतों ने इसे कुन या हुक्म भी कहा है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

चहु दिस हुकम वरतै प्रभ तेरा चहु दिस नाम पतालं॥
सभ मह सबद वरतै प्रभ साचा करम मिलै बैआलं॥[32]

अर्थात्, हे प्रभु, तू हुक्म, शब्द या नाम रूप होकर सारी सृष्टि में व्याप्त है, पर तेरी या तेरे नाम की, शब्द और हुक्म की बड़ाई तेरी रहमत से मिलती है।

गुरु साहिब ने वाणी के एक प्रसंग में '*नामै ही ते सभ किछ होआ...॥*'[33], दूसरे में '*उतपत परलउ सबदे होवै॥*'[34], तीसरे में '*हुकमी होवन आकार...॥*'[35] और चौथे में '*कीता पसाउ एको कवाउ॥*'[36] का संकेत दिया है। कर्ता दो नहीं हो सकते। एक ही शक्ति को परमात्मा, शब्द, नाम, हुक्म या कवाउ कहा गया है।

सुरत-शब्द योग

संतमत में नाम की कमाई, शब्द की कमाई और सुरत-शब्द की कमाई, सब का एक ही अर्थ है। संतमत को सुरत-शब्द योग भी कहा जाता है क्योंकि यह सुरत या आत्मा को शब्द अर्थात् परमात्मा से जोड़ने का मार्ग है।

इसमें सुमिरन द्वारा फैले हुए ख़याल को नौ द्वारों से समेटकर दोनों आँखों के बीच में इकट्ठा किया जाता है। पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में सुरत अपने आप ही अंतर में शब्द या नाम के साथ जुड़ जाती है और शब्द इसको खींचकर परमात्मा में विलीन कर देता है। पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में अंदर प्राप्त होनेवाला यह नाम या शब्द ही मुक्ति का एकमात्र साधन है। गुरु नानक साहिब ने 'सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥'[37] का उपदेश दिया है। आप नाम की कमाई और सुरत-शब्द की साधना का समान अर्थ में प्रयोग करते हुए कहते हैं कि यही प्रभु-मिलन और सच्चे सुख की प्राप्ति का असली साधन है:

राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी वीचार॥
सबद सुरत सुख ऊपजै प्रभ रातउ सुख सार॥[38]

आप सावधान करते हैं कि सुरत-शब्द के अभ्यास से अनजान मनमुख कभी आवागमन के बंधन तोड़कर भवसागर से पार नहीं जा सकते:

साकत नर सबद सुरत किउ पाईऐ॥
सबद सुरत बिन आईऐ जाईऐ॥[39]

कबीर साहिब की वाणी है:

कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान॥[40]

कबीर साहिब की इन पंक्तियों में संसार के करोड़ों ग्रंथ-शास्त्रों का सार भरा हुआ है कि जगत नश्वर है, नाम अविनाशी है और परमात्मा की प्राप्ति उसके नाम की कमाई या सुरत-शब्द के अभ्यास द्वारा ही संभव है। तुलसी साहिब भी सावधान करते हैं:

चार अठारह नौ पढ़े, षट पढ़ि खोया मूल।
सुरत शब्द चीन्हे बिना, ज्यों पंछी चंडूल॥[41]

अर्थात्, सुरत-शब्द के अभ्यास के बिना समस्त वेदों, स्मृतियों और दर्शनों का पठन-पाठन व्यर्थ है।

पलटू साहिब उपदेश देते हैं:

सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद॥
मुझ को भया अनंद मिला पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी॥[42]

आप कहते हैं कि परमात्मा से अभेद होने और परम आनंद प्राप्त करने का एकमात्र साधन सुरत-शब्द का अभ्यास है।

दादू साहिब भी कहते हैं:

(दादू) गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीनदयाल॥[43]

हमारे शरीर के नौ द्वार (दो आँखें, दो कान, नाक के दो छेद, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थान) मन और आत्मा के संसार में कार्यशील होने के लिए हैं। दोनों आँखों के ऊपर भौंहों के मध्य में एक सूक्ष्म नुक़ता या सूक्ष्म बिंदु है, जिसे दसवाँ दरवाज़ा, दसवीं गली, तीसरा तिल, शिव-नेत्र आदि कहा जाता है। यह स्थान आत्मा की स्वाभाविक बैठक है। यहाँ से नीचे उतरकर आत्मा शरीर के नौ द्वारों के ज़रिये सारे संसार में फैली हुई है। आत्मा का रुख़ नीचे और बाहर की ओर है और इसे अंदर आँखों के पीछे स्थित दसवें दरवाज़े का पता नहीं है। यह संसार के अनेक शक्लों-पदार्थों के सुमिरन और ध्यान में लगी हुई है। पूर्ण संत परमात्मा के नाम के सुमिरन द्वारा आत्मा को आँखों के पीछे तीसरे तिल पर एकाग्र और स्थिर करने की युक्ति सिखाते हैं। जैसे ही आत्मा अंतर में उस नुक़ते पर इकट्ठी और स्थिर होती है, वह परमात्मा की सच्ची दरगाह से आ रही शब्द की ध्वनि और शब्द के प्रकाश से जुड़ जाती है। वह शब्द की ध्वनि के द्वारा आंतरिक मंडलों का रुख़ क़ायम कर लेती है और सतगुरु

की सहायता से शब्द के प्रकाश में आंतरिक रूहानी सफ़र तय करती हुई निज घर लौट जाती है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

नउ दर ठाके धावत रहाए॥ दसवै निज घर वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजह दिन राती गुरमती सबद सुणावणिआ॥[44]

अर्थात्, जब शरीर के नौ द्वारों में भटक रहे मन और आत्मा को हम सुमिरन और ध्यान की सहायता से आँखों के पीछे दसवीं गली में एकाग्र और स्थिर कर लेते हैं, तो ख़ुद-ब-ख़ुद अंतर में अनहद शब्द से जुड़ जाते हैं और वह शब्द गुरुमत के अनुसार चलने से ही प्रकट होता है।

यह शब्द ही कर्मों का नाश करता है और यह शब्द ही आत्मा को निर्मल करके प्रभु से मिलने के योग्य बनाता है।

कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि यदि आत्मारूपी स्त्री शरीर के नौ द्वारों में भटकती रहेगी तो इसे परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं होगी:

नउ घर देख जो कामन भूली बसत अनूप न पाई॥
कहत कबीर नवै घर मूसे दसवैं तत समाई॥[45]

अर्थात्, शरीर के नौ द्वार नश्वर हैं। जब तक आत्मा इनमें क़ैद है, वह उस अविनाशी प्रभु तक नहीं पहुँच सकती। उस अनुपम सार-पदार्थ अथवा मूल तत्त्व की प्राप्ति चेतना को शरीर के नौ द्वारों में से समेटकर आँखों के पीछे तीसरे तिल में एकाग्र करने से ही होती है।

बहिर्मुखी साधन

जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, धर्मग्रंथों का पठन-पाठन आदि जो भी साधन हम अपनाते हैं, उनका असली उद्देश्य हमारे मन में परमार्थ के प्रति रुचि पैदा करना तथा मन को संसार की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर मोड़ना है। ये साधन नींव तैयार करने के लिए हैं जिस पर नाम की कमाई का भवन बन सके। ये सब ज़रिया हैं, मंज़िल नहीं। बहिर्मुखी साधन ध्यान को बाहर ही बाहर रखते हैं, जब कि हमारा लक्ष्य इसे

अंतर्मुख करके शब्द से जोड़ना है। बहिर्मुखी साधनों से लाभ उठाया जा सकता है, परंतु इनको शब्द की कमाई का स्थान नहीं दिया जा सकता। 'पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपर नाम॥'[46] और 'पूजा कीचै नाम धिआईऐ बिन नावै पूज न होए॥'[47]

गुरु नानक साहिब कहते हैं:

सबद मिले से सूचाचारी साची दरगह माने॥
अनदिन नाम रतन लिव लागे जुग जुग साच समाने॥
सगले करम धरम सुच संजम जप तप तीरथ सबद वसे॥
नानक सतगुर मिलै मिलाइआ दूख पराछत काल नसे॥[48]

आप सुरत को शब्द में लीन करने का उपदेश देते हैं। यही सच्चा आचार है। इसमें हर प्रकार के धर्म-कर्म, जप-तप, तीर्थ-व्रत आदि का फल शामिल है। इस अभ्यास द्वारा ही जीवात्मा दु:खों से भरे भवसागर को पार करके आनंदस्वरूप प्रभु में विलीन हो सकती है।

मार्गदर्शक

गुरु अर्जुन देव जी प्रश्न करते हैं, '*किन बिध मिलै गुसाई मेरे राम राए॥*'[49] आप स्वयं ही उत्तर देते हैं, 'कोई ऐसा संत सहज सुखदाता मोहे मारग दे बताई॥'[50] जो संत स्वयं प्रभु से मिलकर सहज अवस्था प्राप्त कर चुका है, केवल वही दूसरों को भी यह अवस्था प्राप्त करने का साधन और मार्ग बतला सकता है। आप कहते हैं:

भूले कउ गुर मारग पाइआ॥ अवर तिआग हर भगती लाइआ॥[51]

गुरु नानक देव जी कहते हैं:

भूले सिख गुरू समझाए॥ उझड़ जादे मारग पाए॥[52]

अर्थात्, गुरु जीव को ग़लत रास्ते से हटाकर ठीक रास्ते पर लाता है—वह उसे भक्ति के ग़लत साधनों से निकालकर सच्चे साधन का ज्ञान देता है।

गुरु अमरदास जी का कथन है:

पूजा करै सभ लोक संतहो मनमुख थाए न पाई॥...
गुरमुख होवै सो पूजा जाणै भाणा मन वसाई॥[53]

अर्थात्, मनमरज़ी की भक्ति हमें परमात्मा से नहीं मिला सकती। परमात्मा की भक्ति के पूर्ण साधन और मार्ग का ज्ञान पूर्ण गुरुमुख अथवा संत-महात्मा से प्राप्त होता है।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

सत पुरख जिन जानिआ सतगुर तिस का नाउ॥
तिस कै संग सिख उधरै नानक हर गुन गाउ॥[54]

अर्थात्, जो स्वयं प्रभु से मिलाप कर चुका है, वही सच्चा मार्गदर्शक है और केवल उसके उपदेशानुसार सच्ची भक्ति द्वारा ही साधक उस परमपिता परमात्मा से मिलाप कर सकता है।

प्रभु या प्रभु से मिलानेवाला नाम या शब्द हमारे अंतर में है, परंतु सुरत को शब्द के साथ जोड़ने की युक्ति पूर्ण संत या कामिल मुर्शिद सिखाता है जो शब्द के अभ्यास द्वारा स्वयं प्रभु से मिलाप कर चुका है।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

सभ मह जोत जोत है सोए॥
तिस दै चानण सभ मह चानण होए॥
गुर साखी जोत परगट होए॥[55]

उस परमेश्वर की ज्योति हरएक के अंदर है, पर वह ज्योति गुप्त है। गुरु की शिक्षा, गुरु के उपदेश पर अमल करने से वह ज्योति प्रकट हो जाती है।

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

कासट मह जिउ है बैसंतर मथ संजम काढ कढीजै॥
राम नाम है जोत सबाई तत गुरमत काढ लईजै॥[56]

अर्थात्, जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि होती है और युक्ति से लकड़ी पर लकड़ी रगड़ने से वह प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार राम-नाम की ज्योति हरएक के अंदर है और संत-महात्माओं की मत पर चलने से वह ज्योति प्रकट हो जाती है। परमात्मा ने नामरूपी दौलत हमारे लिए हमारे अंदर रखी हुई है, पर वह दौलत गुप्त है। गुरुमुखों ने नाम की कमाई द्वारा अपने अंदर वह दौलत प्रकट कर ली है। वे आंतरिक रहस्यों और भेदों के जानकार हैं। जब हम उनकी बतायी गयी युक्ति के अनुसार अंतर में खोज करते हैं तो हमें भी अंदर दबा हुआ ख़ज़ाना मिल जाता है। जो कुछ मिलता है अंदर ही मिलता है, परंतु गुरुमुखों की समझायी गयी युक्ति अपनाने से मिलता है।

गुरु नानक साहिब का कथन है, '*सबद गुरू सुरत धुन चेला॥*'[57] सारे संसार का एक ही सच्चा गुरु शब्द है। आत्मा को परमात्मा से शब्द मिलाता है। शब्द-स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी संत जीवात्मा को शब्द के साथ जोड़ता है और शब्द के अभ्यास में उसकी सहायता करता है।

गुरु अमरदास जी कहते हैं:

बिन सबदै अंतर आनेरा॥ न वसत लहै न चूकै फेरा॥
सतगुर हथ कुंजी होरत दर खुलै नाही गुर पूरै भाग मिलावणिआ॥[58]

अर्थात्, जब तक अंतर में शब्द का प्रकाश नहीं होता, न तो आत्मा अंतर में अपना सफ़र तय करके परमात्मा से मिलाप कर सकती है और न ही आवागमन के बंधनों से मुक्त हो सकती है। अंतर में शब्द का प्रकाश कामिल मुर्शिद द्वारा समझायी युक्ति के मुताबिक़ अभ्यास करने से ही प्रकट होता है।

गुरु रामदास जी कहते हैं:

गुर कुंजी पाहू निवल मन कोठा तन छत॥
नानक गुर बिन मन का ताक न उघड़ै अवर न कुंजी हथ॥[59]

पूर्ण गुरु या सतगुरु का असली स्वरूप शब्द या नाम है। वे शब्द में से आते हैं और हमें शब्द के साथ जोड़कर वापस उसी में समा जाते हैं। हज़रत ईसा ने ऐसे महात्मा को 'देहधारी शब्द' कहा है। वह शब्द जब मनुष्य का जामा पहनकर हमारे बीच आता है तो हमारे लिए देहधारी सतगुरु बन जाता है। गुरु साहिब कहते हैं:

हर का संत हर की हर मूरत जिस हिरदै हर नाम मुरार॥[60]

नाम रता सतगुरू है कलिजुग बोहिथ होए॥[61]

परमात्मा का भक्त परमात्मा का ही रूप होता है क्योंकि उसके अंतर में प्रभु का नाम प्रकट होता है। गुरु रामदास जी कहते हैं:

हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥[62]

अर्थात्, परमात्मा शब्द रूप है और आत्मा भी शब्द रूप है। आप आगे समझाते हैं:

सतगुर सागर गुण नाम का मै तिस देखण का चाउ॥[63]

अर्थात्, सतगुरु नाम या शब्द का सागर है और मेरे मन में उनके दर्शन का चाव है।

कबीर साहिब कहते हैं:

सब तत्तन माँ संत बड़े है, सब्द रूप जिन देहियाँ।[64]

सब्द सरूप सतगुर अहैं, जाका आदि न अंत।[65]

अर्थात्, संतजन सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि वे शब्द का साक्षात रूप हैं और शब्द की भाँति आदि और अंत से परे हैं। पलटू साहिब कहते हैं:

हरि जन हरि हैं एक सबद के सार में।
जो चाहैं सो करैं संत दरबार में॥[66]

स्वामी जी महाराज उपदेश देते हैं:

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥
और पहिचान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई॥[67]

शब्द मारगी गुरू न होवे। तो झूठी गुरुवाई लेवे॥[68]

शब्द सरूपी शब्द अभ्यासी। अस गुरु मिले तो पार हुआ॥...
शब्द सुरत बिन जो गुरु होई। ता को छोड़ो पाप कटा॥[69]

भाव यह है कि संत की पहचान करते समय उसकी क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति-पाँति अथवा वेश-भूषा को नहीं, केवल इस बात को ही सामने रखना चाहिये कि वह शब्द-स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी और शब्द-मार्गी है।

गुरु रामदास जी लिखते हैं:

हर जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी॥
जुग जुग पीड़ी चलै सतगुर की जिनी गुरमुख नाम धिआइआ॥
हर पुरख न कब ही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ॥
नानक संत संत हर एको जप हर हर नाम सोहंदी॥[70]

अर्थात्, अलग-अलग वक़्त में पूर्ण संतों का संसार में आने का एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है, परमात्मा की प्राप्ति के इच्छुक जीवों को परमात्मा के नाम से जोड़कर परमात्मा से अभेद करना।

गुरु अर्जुन देव जी गुरुमुख की महिमा करते हुए कहते हैं:

आप जपै अवरह नाम जपावै॥[71]

गुरमुख कोट उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥[72]

गुरु अमरदास जी भी कहते हैं:

इस जग मह नाम अलभ है गुरमुख वसै मन आए॥[73]

संत नाम जपते हैं और नाम जपवाते हैं। नाम संसार में दुर्लभ है, यह केवल संतों के मन में ही बसता है। नाम देकर वे करोड़ों जीवों का उद्धार कर देते हैं।

संत-महात्मा संसार में कोई नया धर्म चलाने के लिए नहीं आते। न ही वे धर्मों और जातियों, क़ौमों और मुल्कों के झगड़े खड़े करने के लिए आते हैं। वे संगत के धन से अपने लिए जायदाद बनाने के लिए भी नहीं आते। यदि वे ऐसा करते हैं तो वे संत नहीं हैं। संत परमात्मा के भक्त और दास होते हैं। वे प्रभु की भक्ति पर बल देते हैं। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

जनम मरण दुहहू मह नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दान दे भगती लाइन हर सिउ लैन मिलाए॥[74]

परोपकारी संतों का संसार में आने का एकमात्र उद्देश्य जीवों को चिताना और परमात्मा की भक्ति द्वारा उनका परमात्मा से मिलाप करवाना होता है। उस कर्ता द्वारा सौंपे गए इस परमार्थी कार्य के सिवाय संतों से किसी दूसरे कार्य की आशा करना व्यर्थ है। समय के अनुसार संतों की भाषा और व्याख्या के ढंग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, परंतु उनके उपदेश और उद्देश्यों में भिन्नता की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

दया-मेहर

परमार्थी साहित्य में उस परमपिता परमेश्वर को दयालु, कृपालु, रहमान-उल-रहीम, बख़्शिंद आदि कहा गया है। वह दया का अथाह सागर है।

गुरु नानक साहिब कहते हैं:

सच खंड वसै निरंकार॥ कर कर वेखै नदर निहाल॥[75]

अर्थात्, वह प्रभु सतलोक से हम पर दया-मेहर की दृष्टि डालता हुआ प्रसन्न हो रहा है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

जिस के जीअ तिन ही रख लीने मेरे प्रभ कउ किरपा आई॥[76]

अपणे जीअ तै आप सम्हाले आप लीए लड़ लाई॥
साच धरम का बेड़ा बांधिआ भवजल पार पवाई॥[77]

भाव यह है कि जिस प्रभु के हम जीव हैं उसे हम पर दया आई और उसने हमारी रक्षा की। फिर ख़ुद प्रभु को ही संबोधित करते हुए गुरु साहिब कहते हैं कि तूने अपने जीवों की ख़ुद सँभाल की और उन्हें अपनी शरण में ले लिया। सच्चे धर्म यानी नाम की नाव में बिठा लिया और उन्हें संसार सागर के पार ले गये।

वह प्रभु जीवों को सचखण्ड ले जाने के लिए दया-मेहर कैसे करता है? गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

साध रूप अपना तन धारिआ॥ महा अगन ते आप उबारिआ॥[78]

अर्थात्, वह परमेश्वर पूर्ण संत का रूप धारण करके जीव को मृत्युलोक की भयानक अग्नि से बचाने के लिए स्वयं यहाँ आता है। पलटू साहिब फ़रमाते हैं:

संत रूप अवतार आप हरि धरि कै आये।
भक्ति करे उपदेस जगत को राह चलाये॥[79]

स्वामी जी महाराज कहते हैं:

संत रूप होय जग में आया। अपना भेद आप उन गाया॥[80]

परमात्मा से मिलाने का साधन परमात्मा का सच्चा नाम है जिसकी दात पूर्ण संत-महात्मा बख़्शते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

जिस वखर कउ लैन तू आइआ॥ राम नाम संतन घर पाइआ॥[81]

अनहद बाणी पूंजी॥ संतन हथ राखी कूंजी॥[82]

अर्थात्, नामरूपी अनहद वाणी की सच्ची पूँजी उस प्रभु ने हर जीव के अंदर रखी है, परंतु उसकी प्राप्ति का भेद पूर्ण संत से ही मिलता है।

गुरु साहिब की वाणी में, '*हर गुण गावै संत प्रसाद॥*'[83], '*प्रभ का सिमरन साध कै संग॥*'[84], '*संत जना का निरमल मंत॥*'[85] आदि अनेक प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि परमात्मा से मिलाप का साधन उसका नाम है और नाम की कमाई की युक्ति या मंत्र की प्राप्ति पूर्ण संत की कृपा से होती है। गुरबानी के अनेक प्रसंगों में ऐसे ही भाव प्रकट किये गए हैं:

संतसंग अंतर प्रभ डीठा॥ नाम प्रभू का लागा मीठा॥[86]

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥[87]

हर अंम्रित बूंद सुहावणी मिल साधू पीवणहार॥[88]

गुरबानी में एक ओर परमात्मा की प्राप्ति को गुरु का प्रसाद कहा गया है तो दूसरी ओर '*संत अनंतह अंतर नाही॥*'[89] और '*हर के संत मिले हर मिलिआ'...॥*[90] का संकेत दिया गया है। इन सबका वर्णन यह भाव प्रकट करता है कि उस निराकार प्रभु की कृपा उसी के साकार रूप संत के ज़रिये होती है। बाबा फ़रीद फ़रमाते हैं:

विधण खूही मुंध इकेली॥ ना को साथी ना को बेली॥
कर किरपा प्रभ साधसंग मेली॥
जा फिर देखा ता मेरा अलहो बेली॥[91]

अर्थात्, संसाररूपी अंधे कुएँ में गिरी हुई निर्बल और बेसहारा जीवात्मा स्वयं इससे बाहर नहीं निकल सकती। वह दयालु प्रभु ही इसे इस संकट से छुड़ा सकता है। आत्मा के छुटकारे के लिए प्रभु क्या युक्ति अपनाता है? वह अपनी दया-मेहर से इसका पूर्ण साधु से मिलाप करा देता है और पूर्ण साधु इसे प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु से मिला देता है।

विशुद्ध रूहानी दर्शन

संतमत विशुद्ध रूहानी दर्शन है। इसका उद्देश्य आत्मा का उद्धार है, जीव का आर्थिक या भौतिक विकास नहीं। संतमत जीव के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं करता। यह न किसी राजनीतिक पार्टी, किसी आर्थिक प्रबंध या विचारधारा का समर्थन करता है, न विरोध। हर जीव सांसारिक समस्याओं के प्रति अपनी सूझबूझ के अनुसार निजी दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वतंत्र होता है।

संतमत न घरबार के त्याग के लिए कहता है और न ही किसी विशेष धर्म अथवा कर्मकांड की वकालत या विरोध करता है। इसमें गृहस्थ की सब ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते हुए और अपने धर्म में रहते हुए नाम की अंतर्मुख साधना करने पर ज़ोर दिया जाता है। इसमें इंद्रियों का दमन करने की नहीं, मन की साधना द्वारा रूहानी तरक़्क़ी करने की युक्ति सिखलाई जाती है। गुरु नानक साहिब ने इसे '*अंजन माहे निरंजन... ॥*'[92] और '*लोक सुखीए परलोक सुहेले॥*'[93] का मार्ग कहा है।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

नानक सतगुर भेटिऐ पूरी होवै जुगत॥
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकत॥[94]

नाम लेने का उद्देश्य

जिज्ञासु को संतमत के सिद्धांतों के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के साथ नाम लेने के मूल उद्देश्य को भी भली भाँति समझ लेना चाहिये।

नाम के अभिलाषियों को सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिये कि नाम हमें अपनी आत्मा के उद्धार के लिए लेना है, इस संसार की नश्वर प्राप्तियों के लिए नहीं। नाम लेने का मूल उद्देश्य आवागमन के बंधन तोड़कर परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा को परम आनंद के उस महासागर में विलीन करना है।

यह सोचकर नाम लेने का निश्चय करना सही नहीं है कि इससे बीमारियाँ दूर हो जायेंगी, व्यापार में उन्नति हो जायेगी, संतान की प्राप्ति हो जायेगी, रिश्तेदार या मित्र प्रसन्न हो जायेंगे, कोई विशेष इच्छा पूरी हो जायेगी या कोई करामात हो जायेगी। जो लोग इस विचार से नाम लेना चाहते हैं कि इससे बेटे-बेटी का विवाह अच्छे परिवार में हो जायेगा, समाज में मान-बड़ाई प्राप्त कर लेंगे, कोई अच्छी नौकरी हासिल कर लेंगे या सत्संग के प्रबंध में कोई पद मिल जायेगा, वे अपने साथ और सत्संग के साथ अन्याय कर रहे हैं। सरदार बहादुर महाराज जी के शब्दों में नाम जपने के अमूल्य अवसर का सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करना ऐसे ही है, जैसे कोई व्यक्ति सोने की तलवार से प्याज़ काट रहा हो और चंदन के बहुमूल्य वृक्षों के कोयले बनाकर बेच रहा हो। कुछ सत्संगी संत-सतगुरुओं के नाम और उनकी तस्वीरों आदि को अपने व्यापार में वृद्धि करने के लिए और तरह-तरह के आर्थिक, सामाजिक

और राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रयोग करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि रूहानी तरक़्क़ी तो दूर रही, हम अभी संतमत और नाम लेने के मूल उद्देश्य को ही नहीं समझ पाये।

कबीर साहिब कहते हैं:

किनही बनजिआ कांसी तांबा किनही लउग सुपारी॥
संतहो बनजिआ नाम गोबिद का ऐसी खेप हमारी॥
हर के नाम के बिआपारी॥
हीरा हाथ चड़िआ निरमोलक छूट गई संसारी॥[1]

दुनिया संसार के पदार्थों का व्यापार करती है परंतु संत संसार में सिर्फ़ प्रभु के नाम के व्यापारी बनकर आते हैं और हमें नाम की अनमोल दौलत का अधिकारी बनाते हैं। जब नाम का हीरा हमें प्राप्त होता है तो हम संसार की ओर से बेमुख हो जाते हैं।

जो कुछ मालिक ने हमें देना है, वह धुर से हमारे मस्तक में लिखा जा चुका है; '*राई घटे न तिल वधे जो लिखिआ करतार।*'[2] हमारे भले का उस परमपिता को हमसे अधिक ख़याल है। जो कुछ मुनासिब है वह हमें ख़ुद ही देगा। इसलिए मालिक से मालिक को माँगना चाहिये, उसका प्यार माँगना चाहिये, उसका नाम माँगना चाहिये। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

विण तुध होर जे मंगणा सिर दुखा कै दुख॥
देह नाम संतोखीआ उतरै मन की भुख॥[3]

यह सोचना ठीक नहीं है कि नाम ले लेने से हमारे कर्मों का नाश हो जायेगा या संतजन हमारे कर्म अपने ऊपर ले लेंगे। बिना प्रारब्ध के जीवन नहीं चल सकता। हरएक जीव को अपने कर्मों का हिसाब स्वयं देना पड़ता है। पर नाम की कमाई से मन इतना बलवान हो जाता है कि जीव प्रारब्ध का ख़ुशी-ख़ुशी भुगतान कर लेता है। कुल मालिक भी प्रेम

और भरोसे से नाम की कमाई में लगे हुए जीवों पर दया करके सूली को सूल अर्थात् काँटा कर देता है। नाम संचित कर्मों का नाश करके आत्मा को निर्मल करता है और नाम ही इसे परमात्मा से मिलाता है। इसलिए हमें तन-मन से नाम की कमाई करने का प्रयत्न करना चाहिये।

कबीर साहिब कहते हैं, '*जैसा तैसा पातकी आवे गुर की ओट। गाँठी बाँधी संत की ना परखे खर खोट॥*'[4] संतजन दयालु और बख़्शंद होते हैं। हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी कहा करते थे, 'अगर संत लोगों की कमज़ोरियों को प्रकट करना शुरू कर दें तो कोई भी उनके दरबार में नहीं ठहर सकता। वे सबकुछ जानते हुए भी अनजान बने रहते हैं।'

नाम के अभिलाषियों से कुछ सवाल पूछे जाते हैं: जैसे उनकी आयु पूछी जाती है, उनसे पूछा जाता है कि वे कब से सत्संग सुन रहे हैं, उन्हें मांस-शराब का त्याग किये हुए कितना समय हो गया है। कई जिज्ञासु यह सोचकर कि नाम जल्दी मिल जाये, पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में ग़लत बयान दे देते हैं। महात्मा हमारे अवगुणों को परदे में रखते हैं, उन्हें प्रकट नहीं करना चाहते, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम परमार्थ की वर्णमाला ही झूठ से शुरू करें। हम यह भूल जाते हैं कि झूठ की नींव पर सत्य के भवन का निर्माण कैसे हो सकेगा? सत्य तो हमारे जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिये। इसलिए हमारे हर कार्य से सत्य की सुगंध आनी चाहिये। चाहे किसी पर नाम की बख़्शिश हो चुकी हो और चाहे वह अभिलाषी हो, संतों के दरबार में झूठ बोलने से उसकी अपनी हानि होती है। हम जितना अधिक झूठ बोलते हैं, उतना ही परमात्मारूपी परम सत्य और उसके सच्चे नाम से दूर होते जाते हैं।

हम डॉक्टर के पास इलाज के लिए जाते हैं तो अपना सारा हाल सही-सही बयान करते हैं, क्योंकि निरोग होने में हमारा अपना ही भला है। हम सोचते नहीं कि यदि हम नाम लेते समय झूठ बोलेंगे तो धोखा दूसरों को नहीं, अपने आपको देंगे। अगर शुरू से ही हम मन के पीछे लग जायेंगे तो भविष्य में तरक़्क़ी कैसे कर सकेंगे? एक ओर किसी संत-महात्मा को बड़ा समझकर उससे नाम लेने की प्रार्थना करना और

दूसरी ओर उसी से झूठ बोलना और उसके बनाये हुए उसूलों को तोड़कर रूहानी उन्नति की आशा रखना कहाँ तक उचित है? हुज़ूर स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

यह धुन है धुर लोक अधर की। कोई पकड़ें संत सिपाही॥[5]

अर्थात्, सतलोक से आ रही इस धुन को अंतर में पकड़ना बच्चों का खेल नहीं। इस धुन को सिपाही की तरह अनुशासन, संयम और दृढ़ निश्चय से मेहनत करनेवाला कोई साधक ही पकड़ सकता है।

नाम लेने का फ़ैसला करने में विलंब करने से इतनी हानि नहीं होती, जितनी बिना सोचे-समझे, बिना विश्वास और इरादे के इस मार्ग पर चलने से होती है। जो लोग नाम लेने के बाद भी, न रहनी को निर्मल बनाते हैं, न हक़-हलाल की कमाई को जीवन का अभिन्न अंग बनाते हैं और न ही मांस, शराब आदि का त्याग करके नाम की कमाई को पूरा समय देते हैं, वे किसी दूसरे की नहीं, अपनी ही हानि करते हैं। अपनी ही गर्दन है और अपनी ही छुरी है। गुरु साहिब ने इस मार्ग को तलवार की धार से तेज़ और बाल से बारीक कहा है:

खंनिअहो तिखी वालहो निकी एत मारग जाणा॥[6]

यह मार्ग अत्यंत संयम, दृढ़ अनुशासन, अभूतपूर्व लगन और निष्ठा का मार्ग है और इन गुणों को धारण करनेवाले व्यक्ति को ही इस ओर अग्रसर होना चाहिये।

नाम लेने के लिए कुछ शर्तें

नाम लेना केवल एक रस्म या कार्यवाही नहीं है। नाम के अभिलाषी को अपने मन में यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह प्रभु की प्राप्ति को जीवन का मूल उद्देश्य समझता है और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वह सच्चे दिल और पूरी लगन से प्रयत्न करने के लिए तैयार है। यही कारण है कि यह शर्त रखी जाती है कि नाम के प्रार्थी की आयु बाईस वर्ष या इससे अधिक हो*। नाम लेने के अभिलाषी की बाईस वर्ष या इससे अधिक आयु होने की शर्त रखने का यह अभिप्राय बिलकुल नहीं है कि इससे छोटी उम्र के अभिलाषियों के हृदय में प्रभु का सच्चा प्रेम नहीं है या उनके मन में उस परमपिता परमात्मा से मिलाप की सच्ची तड़प नहीं है। प्रभु का प्रेम ऐसी भावना है जो छोटे-बड़े, ऊँच-नीच के भेदभाव से परे है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

फरीदा काली धउली साहिब सदा है जे को चित करे॥[1]

---

* 22 वर्ष-पुरुष, विवाहित जोड़े और वे महिलाएँ जिनके पति को नाम मिल चुका है।

* 25 वर्ष-अकेली महिलाएँ जो आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर हैं और ऐसी विवाहित महिलाएँ जिनके पति को नाम नहीं मिला।

* 27 वर्ष-अकेली महिलाएँ जिनके निर्वाह का निजी साधन नहीं है।

* गर्भवती महिलाओं को पहले चार महीने तक नामदान की बख़्शिश हो सकती है। चार महीने के बाद उन्हें बच्चे का जन्म होने तक प्रतीक्षा करनी होगी।

अर्थात्, मन का झुकाव प्रभु की भक्ति की ओर होना, चाहे जवानी में और चाहे बुढ़ापे में, सौभाग्य से होता है। महत्त्व उम्र या बुद्धि का नहीं, भावना की निर्मलता का है।

जिज्ञासु की आयु बाईस साल* होने से केवल इतना अभिप्राय है कि नाम लेने का इच्छुक अपने पैरों पर खड़ा हो चुका हो ताकि किसी दूसरे की प्रेरणा और प्रभाव से नहीं, बल्कि अपनी स्वतंत्र सोच के आधार पर ख़ुद नाम लेने का निर्णय करने के योग्य हो। नाम के अभिलाषियों से बार-बार अनुरोध किया जाता है कि इस कार्य में जल्दबाज़ी से काम न लें और गंभीरतापूर्वक विचार और जाँच पड़ताल कर लेने के बाद ही नाम लेने का निर्णय करें।

नाम के अभिलाषी से यह आशा की जाती है कि उसने कुछ सत्संग सुने हों तथा संतमत का साहित्य पढ़ा या सुना हो। अभिप्राय यह है कि अभिलाषी मन की पूरी तैयारी के बाद ही नाम लेने का फ़ैसला करे।

रोगी डॉक्टर द्वारा बताये गए परहेज़ों का पालन करता है, क्योंकि इसमें उसका अपना भला होता है। संगीत सीखने का इच्छुक प्रसन्नतापूर्वक संगीत के उस्ताद द्वारा लगाई गयी शर्तों और उस द्वारा निश्चित किये गए संयम का पालन करता है। सेना में भर्ती हुआ जवान सेना के अनुशासन का पालन करता है। प्रत्येक खेल, खेल के नियमों के अनुसार खेला जाता है। नियम खिलाड़ी के लाभ के लिए होते हैं। नियम उसे खेल में निपुणता प्राप्त करने में सहायता देने के लिए होते हैं, उसके मार्ग में रुकावटें खड़ी करने के लिए नहीं।

नामदान के अभिलाषी के सामने चार शर्तें रखी जाती हैं। रूहानी तरक़्क़ी के लिए इनका तन-मन से जीवनभर पालन करना आवश्यक है। ये शर्तें हैं:

1. शुद्ध शाकाहारी भोजन करना।
2. शराब, धूम्रपान और हर तरह के तम्बाकू और नशीले पदार्थों से परहेज़ करना।
3. निर्मल, सदाचारिक जीवन बिताना और हक़-हलाल की कमाई करना।
4. भजन-सुमिरन।

---

* नाम लेने का इच्छुक या तो अपने पैरों पर खड़ा हो चुका हो या पढ़ाई कर रहा हो।

1. शाकाहारी भोजन

नाम के अभिलाषी को नामदान के लिए प्रार्थना करने से पहले एक साल तक शाकाहारी भोजन का सेवन करके देख लेना चाहिये कि वह नाम लेने के बाद इस प्रकार के भोजन पर गुज़ारा कर सकेगा या नहीं। शाकाहारी भोजन का अर्थ है मांस, मछली, निर्जीव और सजीव अंडों आदि और इनसे बनी सब वस्तुओं से पूरा परहेज़ करना।

'*जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।*'[2] भोजन का मन पर और मनोवृत्ति का भजन-सिमरन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऋषि-मुनियों के अनुसार भोजन तीन प्रकार का होता है: तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। तामसिक भोजन में मांस, शराब आदि नशे, सुस्ती, नींद तथा कई प्रकार के विकारों का कारण बननेवाले पदार्थ शामिल हैं। राजसिक भोजन में मिर्च-मसाले आदि उत्तेजना पैदा करनेवाले पदार्थ शामिल हैं। सात्त्विक भोजन में अनाज, चावल, दालें, फल, सब्ज़ियाँ, दूध और उससे बनी वस्तुएँ शामिल हैं। इन्हें शांति और स्थिरता देनेवाले पदार्थ माना गया है। पर बहुत अधिक मात्रा में खाया गया सात्त्विक भोजन भी तामसिक हो जाता है। गुरु नानक साहिब ने आसा राग के शब्द '*सभ रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे॥*'[3] में प्रभु के नाम और उसकी रज़ा में रहने का प्रेम पैदा करनेवाले खानपान और पहरावे की महिमा की है तथा अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रोगों का कारण बननेवाले खानपान और पहरावे को अनुचित बताया है:

बाबा होर खाणा खुसी खुआर॥
जित खाधै तन पीड़ीऐ मन मह चलह विकार॥...
बाबा होर पैनण खुसी खुआर॥
जित पैधे तन पीड़ीऐ मन मह चलह विकार॥[4]

जीवहत्या से और मांस आदि के प्रयोग से मन कठोर और निर्दयी होता है तथा कर्मों का बोझ बढ़ता है, जबकि अभ्यासी का उद्देश्य मन

को कोमल बनाना, उसमें दया की भावना उत्पन्न करना तथा अपने कर्मों के बोझ को हलका करना है।

2. शराब तथा नशीले पदार्थों से परहेज़

नाम के अभिलाषी के लिए नाम की याचना करने से पहले एक साल तक शराब, इससे मिलते-जुलते पेय पदार्थ, धूम्रपान और हर प्रकार के तम्बाकू और मन पर असर डालनेवाले सभी तरह के नशीले पदार्थ जैसे मारिह्वाना, कोकेन, एल॰एस॰डी॰ आदि के सेवन का पूरी तरह त्याग कर देना ज़रूरी है। नाम के अभिलाषी को पूरी तसल्ली कर लेनी चाहिये कि वह नाम लेने के बाद किसी भी हालत में इन नशीले पदार्थों के सेवन से दूर रह सकेगा। शराब, तम्बाकू आदि पदार्थ तामसिक हैं, जबकि भजन-सिमरन में उन्नति के लिए शांति पैदा करनेवाले सात्त्विक भोजन की आवश्यकता है।

अभ्यासी का उद्देश्य मन को शांत करके इसे अंतर में नाम से जोड़ना है। शराब, तम्बाकू आदि नशों के सेवन से मन फैलता है और उत्तेजित होकर बाहर की ओर दौड़ता है, जिससे एकाग्रता में रुकावट पैदा होती है। हमें तो चेतन अवस्था से परम चेतन अवस्था की ओर जाना है, जबकि शराब आदि नशे हमारी चेतना को उसकी वर्तमान अवस्था से भी नीचे ले जाते हैं। गुरु रविदास जी सावधान करते हैं:

सुरसरी सलल क्रित बारुनी रे संत जन करत नही पानं॥
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे सुरसरी मिलत नह होए आनं॥[5]

अर्थात्, शराब गंगा जल में मिलाने से भी अपवित्र रहती है इसलिए प्रभु के भक्त कभी इसके निकट नहीं जाते। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

माणस भरिआ आणिआ माणस भरिआ आए॥
जित पीतै मत दूर होए बरल पवै विच आए॥
आपणा पराइआ न पछाणई खसमहो धके खाए॥

जित पीतै खसम विसरै दरगह मिलै सजाए॥
झूठा मद मूल न पीचई जे का पार वसाए॥
नानक नदरी सच मद पाईऐ सतगुर मिले जिस आए॥
सदा साहिब कै रंग रहै महली पावै थाउ॥[6]

अर्थात्, मन और बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाली, अनेक पापों में प्रवृत्त करनेवाली और प्रभु से दूर रखनेवाली, अपने पराये की पहचान ख़त्म करनेवाली शराब के नज़दीक भूले-भटके भी नहीं जाना चाहिये। इस झूठी शराब को त्यागकर नाम की सच्ची शराब पीनी चाहिये। नाम की शराब का नशा कभी नहीं उतरता। नाम से हृदय में प्रभु का प्रेम उत्पन्न होता है और आत्मा का परमात्मा से मिलाप हो जाता है।

जिस तरह शराब हमारे लिए हानिकारक है, उसी तरह धूम्रपान भी नुकसानदेह है। इसलिए रूहानी नज़रिये से हमें हर उस आदत से दूर रहना चाहिए जिसका हम पर बुरा असर पड़ता है। अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल ठीक तरह से करना हमारा फ़र्ज़ है। धूम्रपान आसानी से ऐसी आदत बन जाती है जो हमारे मन पर अपना गहरा असर डालती है। इसकी वजह से मन और शरीर में ऐसी ज़बरदस्त तलब उठती है जो हमारे मनोबल को कमज़ोर कर देती है। परमार्थ के मार्ग पर चलने, ज़िंदगी का सामना करने और अपने उसूलों पर क़ायम रहने के लिए हमें सुदृढ़ इच्छाशक्ति की ज़रूरत है। धूम्रपान हमें शारीरिक और मानसिक तौर से कमज़ोर बना देता है और इसका हानिकारक असर हमारी रूहानी तरक़्क़ी पर पड़ता है।

> धूम्रपान एक ख़तरनाक आदत है, यह धीमी गति का ज़हर है जो कई गंभीर रोगों को जन्म देता है। इसलिए बेहतर है कि हम ऐसी आदतों से दूर रहें। हम ज़ोर देकर यह सुझाव देते हैं कि जो भी आदत हमें अपने वश में कर लेती है और हमारी सेहत के लिए हानिकारक है, उससे हमें सख़्त परहेज़ करना चाहिये।
>
> *जी. एस. ढिल्लों*

3. (क) निर्मल, सदाचारपूर्ण जीवन

नाम के अभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिए निर्मल, संयम तथा सदाचार से परिपूर्ण जीवन आवश्यक है। पति-पत्नी के विवाहित जीवन पर कोई पाबंदी नहीं है, किंतु पर-पुरुष तथा पर-नारी से शारीरिक संबंधों की इजाज़त नहीं है। निर्मल रहनी रूहानी जीवन तथा भजन-सुमिरन की नींव है। प्रभु से मिलाप के लिए निर्मल आचरण पहली शर्त है। काम-वासना तथा इंद्रियों के भोग रूहानी तरक़्क़ी के सबसे बड़े शत्रु हैं। विषयों-विकारों में लिप्त रहना तथा नाम की कमाई में सफलता की आशा करना पूर्व और पश्चिम, दिन और रात को एक जगह लाने का प्रयत्न करने के समान है।

3. (ख) हक़-हलाल की कमाई

संत-महात्माओं ने अपने उपदेश में स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में हक़-हलाल की कमाई पर बल दिया है। हक़-हलाल की कमाई से उनका तात्पर्य उस धन से है जो सच्चाई और नेकी द्वारा कमाया गया हो; जिस पर न्याय, कानून और नैतिकता की दृष्टि से उपभोग करनेवाले का हक़ या अधिकार हो, जिसे कमाने में देश व समाज के नियमों तथा मानवता का हनन न किया गया हो, जिसे प्राप्त करने के लिए किसी का नुकसान न किया गया हो तथा जिसमें से सब भागीदारों को उनका हिस्सा न्यायपूर्वक दे दिया गया हो।

संत-महात्माओं ने पवित्र रहनी तथा हक़-हलाल की कमाई की स्वयं जीती-जागती मिसाल स्थापित करके परमार्थ के साधकों को अपने जीवन में पवित्रता और ईमानदारी अपनाने की प्रेरणा दी है। किसी भी पूर्ण संत ने अपने गुज़ारे के लिए अपने शिष्यों या सेवकों के आगे हाथ नहीं फैलाया है, न ही वे औरों की कमाई पर निर्भर करते हैं।

संत नामदेव ने जीवनभर छीपे और दर्ज़ी का काम किया और कबीर साहिब ने जुलाहे का। संत रविदास ने जूतियाँ गाँठकर अपना गुज़ारा किया।

गुरु नानक साहिब ने राजा-प्रजा, हिंदू-मुसलमान सभी के लिए 'सुकृत' अथवा नेक कमाई के नियम पर ज़ोर दिया। आपने पहले दौलत

ख़ाँ लोदी के मोदीख़ाने में काम करके और बाद में करतारपुर में खेती करके अपना गुज़ारा किया और ज़रूरतमंदों की सहायता भी की।

संत दादू दयाल ने आजीवन धुनिये का व्यवसाय करके और पलटू साहिब ने आटे-दाल की दुकान चलाकर अपना निर्वाह किया। दरिया साहिब (बिहारवाले) ने अंत समय तक दर्ज़ी का काम किया।

स्वामी जी महाराज वल्लभगढ़ के राजा के पास फ़ारसी के अध्यापक थे। वेतन के साथ जो रसद उन्हें मिलती थी, वह सारी ज़रूरतमंदों में बाँट देते थे और वेतन का काफ़ी बड़ा हिस्सा अपने पिता जी को भेज देते थे। बाबा जैमल सिंह जी ने बत्तीस साल तक फ़ौज में नौकरी की और बाक़ी सारा जीवन अपनी पैंशन पर गुज़ारा करते हुए साध-संगत की सेवा की। महाराज सावन सिंह जी फ़ौज के इंजीनियरिंग विभाग में एस॰ डी॰ ओ॰ थे। गुरु-पद को सँभालने के बाद उन्होंने अपनी पैंशन तथा खेती की आमदनी से अपने तथा अपने परिवार का पालन-पोषण किया। सरदार बहादुर महाराज जगत सिंह जी राजकीय कृषि विद्यालय (लायलपुर) में वाइस प्रिंसिपल थे। रिटायर होने के बाद भी आप अपने ख़र्च के लिए पैंशन के कुछ रुपये रखकर बाक़ी रुपये ग़रीब विद्यार्थियों तथा ज़रूरतमंद रिश्तेदारों में बाँट देते थे। महाराज चरन सिंह जी शुरू में वकालत करते थे और गद्दी पर आने के बाद अपने कृषि-फ़ार्म की आमदनी पर अपना और अपने परिवार का निर्वाह करते थे। कृषि-फ़ार्म से प्रति वर्ष लंगर के लिए अनाज, गुड़ तथा शक्कर सेवा में भेजते थे। सभी संतों ने नेक कमाई के धन का उपभोग बाँटकर करने की प्रेरणा दी है।

उपरोक्त तीन शर्तों पर एक वर्ष तक अमल करने से अभिलाषी के मन में एक परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। एक ओर उसे यह महसूस होने लगता है कि नाम की कमाई में सफलता के लिए इंद्रियों के भोगों एवं विषयों-विकारों से मुँह मोड़कर संतमत के उसूलों के अनुसार जीवन को ढालना आवश्यक है। दूसरी ओर उसके मन में विश्वास पैदा होता है कि वह इस अभ्यास के लिए उद्यम करने के लिए तैयार है। इन उसूलों का पालन करने से वह नींव तैयार होती है जिस पर प्रभुभक्ति अथवा नाम की कमाईरूपी इमारत का निर्माण होता है।

जब अभिलाषी का मन इस तरह के नये जीवन के लिए तैयार हो जाता है और उसे नामदान मिल जाता है तो उसके सामने नामदान के समय समझायी गयी युक्ति के अनुसार प्रतिदिन ढाई घंटे भजन-सिमरन करने की शर्त रखी जाती है। जितना अधिक गुड़ डालेंगे, उतना अधिक मीठा होगा। ढाई घंटे प्रतिदिन अभ्यास करने के नियम के पालन से साधक का मनोबल बढ़ता है और उसके अंदर वह अनुशासन-भावना जागती है जो रूहानी अभ्यास में सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। विद्यार्थी रोज़ पूरे समय के लिए स्कूल में जाता है। संगीतकार बनने का इच्छुक अपने उस्ताद के आदेशानुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक रिआज़ (अभ्यास) करता है। लंबी दौड़ की तैयारी में लगा खिलाड़ी ही नहीं, हर खेल का खिलाड़ी रोज़ अभ्यास को पूरा समय देता है। मन को ज़रा-सा ढीला छोड़ने से उन्नति में विघ्न पड़ जाता है। वास्तव में नामदान से पहले रखी गयी तीनों शर्तों का पालन इस चौथी शर्त के पालन में सहायता के लिए है।

4. भजन-सुमिरन

नामदान के समय साधक को समझायी गयी युक्ति के अनुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक ढाई घंटे भजन-सुमिरन करने की ताकीद की जाती है। सुमिरन शब्द 'स्मरण' से बना है जिसका अर्थ है याद करना। उस मालिक की सच्ची भक्ति उसकी याद है। हमारा भजन-सुमिरन हमारे मन को दुनिया की याद से हटाकर कुल मालिक की याद की ओर ले जाने का साधन है। यह उस परमपिता परमात्मा के प्रति आभार प्रकट करने का उत्तम तरीक़ा है। आज जहाँ भी हम खड़े हैं, जो कुछ भी हम हैं, जो कुछ भी हमें प्राप्त है, केवल उस दयालु परमात्मा की कृपा से है। उसने सबसे बड़ी कृपा यह की है कि हमें अनमोल मनुष्य शरीर प्रदान किया है जो चौरासी की सीढ़ी का आख़िरी डंडा है। कुल मालिक की भक्ति मनुष्य-शरीर में ही हो सकती है और यह शरीर दिया भी मालिक की भक्ति के लिए जाता है।

गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

कई जनम भए कीट पतंगा॥ कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥ कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥
मिल जगदीस मिलन की बरीआ॥ चिरंकाल इह देह संजरीआ॥[7]

कुल मालिक के प्रति आभार प्रकट करने और मनुष्य-जन्म का सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करने का यही ढंग है कि हम मालिक की याद में बैठें, उसकी भक्ति में लगें और उसके नाम में तल्लीन हों।

आप उपदेश देते हैं:

ऊठत बैठत सोवत जागत हर धिआईऐ सगल अवरदा जीउ॥[8]

अर्थात्, हमें जीवनभर हर पल उस प्रभु की याद में डूबे रहना चाहिये। हर समय प्रभु को याद करना चाहिये।

ऐसी अवस्था प्राप्त करना हमारा असल उद्देश्य है। संतजन समझाते हैं कि प्रारंभ में हमें अपने समय का कम से कम दस फ़ीसदी भाग तो कुल मालिक की याद में लगाना ही चाहिये। जैसे-जैसे परमात्मा की याद या भजन-सुमिरन का समय बढ़ाते जाते हैं, हम संसार के भक्त होने के स्थान पर परमात्मा के भक्त बनते जाते हैं।

उचित वातावरण

पहले भी कहा जा चुका है कि नाम लेना कोई रस्म पूरी करना नहीं है। यह वास्तव में मुक्ति प्राप्त करने के रूहानी अभ्यास से परिचित होना है। जब तक हमें मंज़िल तक ले जानेवाले मार्ग और साधन का पता नहीं चलता, हम मार्ग और साधन के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उसके बाद हमारा उद्देश्य होता है सफ़र तय करने का प्रयत्न करना।

स्वामी जी महाराज कहते हैं, *'यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।'*[9] सच्ची रूहानियत केवल बातों का विषय नहीं, बल्कि यह अपने

आचार-विचार और आहार को निर्मल बनाकर अभ्यास द्वारा स्वयं अनुभव प्राप्त करना है। नामदान लेने से हमारा कार्य ख़त्म नहीं, आरंभ होता है। अध्यापक विद्यार्थी की हर प्रकार की सहायता करता है, परंतु विद्यार्थी को पढ़ाई तो स्वयं करनी होती है और परीक्षा भी स्वयं पास करनी पड़ती है। इसलिए हरएक साधक या अभ्यासी को अपने आसपास ख़ुद ऐसा वातावरण बनाना है जिसमें वह संतमत के उसूलों का पालन कर सके तथा भजन-सुमिरन को अधिक से अधिक समय दे सके। गुरु अर्जुन देव जी प्रेरणा देते हैं कि दीन और दुनिया, परमार्थ और स्वार्थ, दोनों में अपने पुरुषार्थ से सफलता प्राप्त होती है।

आप उपदेश देते हैं:

उदम करेदिआ जीउ तूं कमावदिआ सुख भुंच॥
धिआइदिआ तूं प्रभू मिल नानक उतरी चिंत॥[10]

अर्थात्, प्रभु की भक्ति द्वारा आत्मिक जीवन मिलता है, सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, प्रभु से मिलाप हो जाता है और सब चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं। इसलिए उत्साहपूर्वक प्रभु-भजन में लगना चाहिये।

स्वामी जी महाराज का उपदेश है:

जो कुछ बने सो अभी बनाओ। फिर का कुछ न भरोसा धरना॥[11]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

आगाहा कू त्राघ पिछा फेर न मुहडड़ा॥
नानक सिझ इवेहा वार बहुड़ न होवी जनमड़ा॥[12]

अर्थात्, साधक का क़दम सदैव आगे उठना चाहिये। उसे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिये ताकि वह मनुष्य-जन्म के उद्देश्य को इसी जन्म में पूरा कर ले और उसे बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में न पड़ना पड़े।

जिज्ञासुओं से विनती

अंत में जिज्ञासुओं से फिर विनती है कि संतमत के हर पहलू को हर दृष्टि से अच्छी तरह समझने के लिए हर संभव प्रयत्न करें। संत-महात्माओं की वाणी, उनके जीवन और उपदेश से संबंधित अनेक पुस्तकें राधास्वामी सत्संग ब्यास और अन्य कई संस्थाओं द्वारा अनेक प्रांतों में तथा विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की गयी हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों से संतमत और संतमत के अनुयायियों की कमियों, कमज़ोरियों और सीमाओं का उल्लेख करनेवाली पुस्तकों की भी कमी नहीं। जिज्ञासुओं को चाहिये कि उन्हें पढ़ें, संतमत के मूल सिद्धांतों और विद्वानों द्वारा की गयी उनकी आलोचना पर गंभीरतापूर्वक विचार करें और अपनी निजी मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें तोलें। अपनी रुचि और अपने जीवन की गतिविधियों पर ध्यान देकर देखें कि कौन-से सिद्धांत उन्हें प्रभावित और आकर्षित करते हैं। यदि वे यह जान लें कि जीवन के किन पहलुओं को वे प्राथमिकता देते हैं या उन्हें देनी चाहिये और उनके जीवन का लक्ष्य क्या है, उनकी मंज़िल क्या है, तो वे मंज़िल की तरफ़ जाने के लिए सही मार्ग का चुनाव कर सकते हैं।

संतमत की राह पर आकर नामदान का पूरा लाभ उठाने के लिए जीवन में परिवर्तन लाना ज़रूरी है। जिज्ञासु को सोचना है कि संतमत के उसूलों—नेक रहनी, हक़-हलाल की कमाई, शाकाहारी भोजन व नियमपूर्वक भजन-सुमिरन—के अनुसार अपने जीवन को ढालने के लिए क्या वह वर्जित चीज़ों का त्याग कर पायेगा और जिन नियमों को अपनाना ज़रूरी है, उन्हें अपना सकेगा? क्या वह इन उसूलों का पालन करते हुए

अपने जीवन में संतुलन रख सकेगा, सहज भाव से जीवन बिता सकेगा? इन प्रश्नों के उत्तर हर जिज्ञासु को किसी पुस्तक या सत्संग में नहीं, बल्कि अपने ही अंदर खोजने चाहियें। अपने आध्यात्मिक सफ़र को शुरू करने से पहले उसकी तैयारी उसे अपने ढंग से, अपने आप ही करनी होगी।

जिज्ञासुओं से अनुरोध है कि नाम लेने का निर्णय देखादेखी या कहीसुनी बातों के आधार पर, किसी के दबाव में आकर, दु:खों से घबराकर, सुख-समृद्धि पाने की आशा से या भावनाओं के प्रभाव में आकर न करें। नाम लेने का फ़ैसला तभी करें जब पूरे सोच-विचार और अपनी स्वतंत्र खोज के बाद इस नतीजे पर पहुँचें कि उनका इष्ट प्रभु अर्थात् कुल मालिक है, उस प्रभु की प्राप्ति केवल पूरे नाम द्वारा ही संभव है और वह नाम किसी पूर्ण संत से ही प्राप्त हो सकता है। रूहानियत की राह पर चलने का प्रयास करने से पहले इन मूल सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है। एक ऐसा विश्वास जो दिल की गहराइयों तक पहुँचे और जिससे बुद्धि की पूरी तसल्ली होती हो।

इन सिद्धांतों की पुष्टि के संकेत धर्मग्रंथों में जगह-जगह मिलते हैं। गीता में लिखा है कि जो जिस इष्ट का ध्यान करता है वह उसी इष्ट को पाता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'जैसा सेवै तैसो होए॥'[1]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

पूरा प्रभ आराधिआ पूरा जा का नाउ॥
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ॥[2]

भाव यह है कि इष्ट भी पूर्ण होना चाहिये और उससे मिलानेवाला नाम भी पूर्ण होना चाहिये।

संत चाहे किसी भी धर्म या संप्रदाय में पैदा हुए हों, बार-बार नाम के महत्त्व पर ज़ोर देते हैं। संत दादू दयाल जी के वचन हैं:

नाँउ रे नाँउ रे, सकल सिरोमणी नाँउ रे, मैं बलिहारी जाउँ रे॥
दूतर तारै पार उतारै, नरक निवारैं नाँउ रे॥

तारणहारा भौजल पारा, निर्मल सारा नाँउ रे॥
नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाँउ रे॥
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाँउ रे॥[3]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

सिम्रिति बेद पुराण पुकारन पोथीआ॥
नाम बिना सभ कूड़ गाल्ही होछीआ॥
नाम निधान अपार भगता मन वसै॥
जनम मरण मोह दुख साधू संग नसै॥[4]

अर्थात्, सब धर्मग्रंथ पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि नाम के सिवाय और कोई भी साधन हमें मुक्ति नहीं दिला सकता, परमात्मा से नहीं मिला सकता। इसी भाव को बाबा फ़रीद एक चेतावनी के रूप में व्यक्त करते हैं:

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओन नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥[5]

कबीर साहिब सहज, सरल भाषा में एक ही पद्य में संतमत का पूरा सार प्रस्तुत करते हुए फ़रमाते हैं कि शब्द को पहचानो क्योंकि केवल यही सत्य है:

कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान॥[6]

अर्थात्, जगत नश्वर है, नाम या शब्द अविनाशी है। अपनी आत्मा से ही शब्द की पहचान करो।

गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

देही अंदर नाम निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥[7]

अर्थात्, प्रभु से मिलाप करवानेवाला सच्चा नाम या शब्द, काया के अंदर है। इसी नाम या शब्द को गुरु नानक साहिब ने जीव का सच्चा मार्गदर्शक या मुर्शिद कहा है:

सबद गुरू सुरत धुन चेला॥[8]

शरीर में बैठी आत्मा को शब्द द्वारा ही परमात्मा से मिलाप करना है। पर आत्मा शब्द की खोज करे तो कैसे करे, उससे जुड़े तो कैसे जुड़े? पहले कहा जा चुका है कि शब्द का ज्ञान और उससे जुड़ने की युक्ति कोई ऐसा संत-महात्मा ही सिखा सकता है जो शब्द का अभ्यास करके शब्द का ही रूप बन चुका हो। सभी पूर्ण संतों ने शब्द की साधना के लिए शब्द-स्वरूपी, शब्द-मार्गी महात्मा की आवश्यकता पर बल दिया है। ऐसे संत साधक को सुमिरन द्वारा अपनी सुरत को आँखों के पीछे समेटकर, उसे स्थिर करके शब्द के साथ जोड़ने की विधि सिखाते हैं और शब्द के अभ्यास में उसकी सहायता करते हैं। वे स्वयं पूरा नाम जपते हैं और अपनी शरण में आये अभ्यासी को वही नाम देकर उसके ध्यान को बहिर्मुखी कर्मकांड, जप-तप, आदि की ओर से मोड़कर अंतर्मुखी करते हैं और उसे शब्द की भक्ति में लगाकर प्रभु से मिलाते हैं। अपने शिष्य के पूरे रूहानी सफ़र में वह उसके मार्गदर्शक, सहायक और संरक्षक होते हैं। प्रभु से मिलाप करने का यह विधान प्रभु ने स्वयं बनाया है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सचै सबद सची पत होई॥ बिन नावै मुकत न पावै कोई॥
बिन सतगुर को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बणाई हे॥[9]

जिज्ञासुओं को अपने जीवन के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निष्पक्ष भाव से, स्वतंत्र बुद्धि से और अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा के अनुसार ही अपने रूहानी मार्ग और मार्गदर्शक के बारे में निर्णय लेना चाहिये। ध्यान रहे कि वे किसी विशेष स्थान, संस्था और महात्मा के साथ बँधने के लिए मजबूर नहीं हैं। यदि उन्हें तनिक भी ऐसा लगे कि

राधास्वामी सत्संग ब्यास या किसी दूसरी संस्था एवं स्थान से जुड़े हुए महात्मा शब्द-अभ्यासी, शब्द-स्वरूपी अर्थात् पूर्ण संत नहीं हैं और उनके द्वारा सिखाई युक्ति सही नहीं है, तो उन्हें पूरे नाम का भेद देनेवाले किसी अन्य महात्मा की खोज करनी चाहिये ताकि बाद में पछतावा न हो। गुरु अमरदास जी की चेतावनी सदा याद रखें:

मै जानिआ वड हंस है ता मै कीआ संग॥
जे जाणा बग बपुड़ा त जनम न देदी अंग॥[10]

संदर्भ सूची

खोज की आवश्यकता

1. आदि ग्रन्थ, पृ.520
2. मीरां बृहत्पदावली, पृ.183

कुछ मूल बातें

1. आदि ग्रन्थ, पृ.1045
2. आदि ग्रन्थ, पृ.1153
3. आदि ग्रन्थ, पृ.1427
4. आदि ग्रन्थ, पृ.1346
5. कबीर साखी-संग्रह, पृ.106
6. आदि ग्रन्थ, पृ.663
7. आदि ग्रन्थ, पृ.1323
8. आदि ग्रन्थ, पृ.1383
9. प्राप्त नहीं
10. आदि ग्रन्थ, पृ.1189
11. आदि ग्रन्थ, पृ.353
12. आदि ग्रन्थ, पृ.469
13. कबीर ग्रन्थावली, पृ.293
14. पलटू साहिब की बानी, भाग1, कुं.218
15. आदि ग्रन्थ, पृ.1330
16. आदि ग्रन्थ, पृ.1046
17. आदि ग्रन्थ, पृ.1122
18. आदि ग्रन्थ, पृ.622
19. संत बानी, पृ.46
20. मैथ्यू 5:18
21. रोमन्स 10:12
22. क़ुरान शरीफ़ 2:136
23. सारबचन संग्रह, 20:10:12
24. सारबचन संग्रह, 2:सिफ़त 4:1-4
25. आदि ग्रन्थ, पृ.346
26. श्रीरामचरितमानस 1:21:4
27. आदि ग्रन्थ, पृ.1185
28. सारबचन संग्रह, 38: मास 3:11
29. श्रीरामचरितमानस 7:115(ख):1
30. श्रीरामचरितमानस 1:26:1
31. आदि ग्रन्थ, पृ.296
32. आदि ग्रन्थ, पृ.1175

सत्संग ब्यास के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण

1. आदि ग्रन्थ, पृ.156

संतमत का सार

1. आदि ग्रन्थ, पृ.1
2. आदि ग्रन्थ, पृ.556
3. आदि ग्रन्थ, पृ.98
4. आदि ग्रन्थ, पृ.917
5. सारबचन संग्रह, 16:1:1-2
6. आदि ग्रन्थ, पृ.1379
7. आदि ग्रन्थ, पृ.378

8. आदि ग्रन्थ, पृ. 1159
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 60
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 1164
11. सारबचन संग्रह, 12:1:1-2, 5-6
12-15. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
16. कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2, पृ. 107
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 1164
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 658
19. पलटू साहिब की बानी, भाग 3, पृ. 68
20. चरनदास की बानी, भाग 2, पृ. 74
21. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 84
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 644
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 1334
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 1083
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 753
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 4
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 1064
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
29. आदि ग्रन्थ, पृ. 229
30. आदि ग्रन्थ, पृ. 293
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
32. आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
33. आदि ग्रन्थ, पृ. 753
34. आदि ग्रन्थ, पृ. 117
35. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
36. आदि ग्रन्थ, पृ. 3
37. आदि ग्रन्थ, पृ. 938
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
39. आदि ग्रन्थ, पृ. 1042
40. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 103
41. संतबानी संग्रह, भाग 1, पृ. 215
42. पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुं. 89
43. दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ. 83
44. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
45. आदि ग्रन्थ, पृ. 339
46. आदि ग्रन्थ, पृ. 401
47. आदि ग्रन्थ, पृ. 489
48. आदि ग्रन्थ, पृ. 1332
49-50. आदि ग्रन्थ, पृ. 204
51. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
52. आदि ग्रन्थ, पृ. 1032
53. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
54. आदि ग्रन्थ, पृ. 286
55. आदि ग्रन्थ, पृ. 13
56. आदि ग्रन्थ, पृ. 1323
57. आदि ग्रन्थ, पृ. 943
58. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
59. आदि ग्रन्थ, पृ. 1237
60. आदि ग्रन्थ, पृ. 1134
61. आदि ग्रन्थ, पृ. 552
62. आदि ग्रन्थ, पृ. 165
63. आदि ग्रन्थ, पृ. 759
64. कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 92
65. कबीर अखरावती, पृ. 3
66. पलटू साहिब की बानी, भाग 2, पृ. 64
67. सारबचन राधास्वामी छन्द-बन्द, 13:1:1-3
68. सारबचन संग्रह, 16:1:4

69. सारबचन संग्रह, 13:3:6,9
70. आदि ग्रन्थ, पृ.79
71. आदि ग्रन्थ, पृ.1206
72. आदि ग्रन्थ, पृ.608
73. आदि ग्रन्थ, पृ.644
74. आदि ग्रन्थ, पृ.749
75. आदि ग्रन्थ, पृ.8
76. आदि ग्रन्थ, पृ.1269
77. आदि ग्रन्थ, पृ.916
78. आदि ग्रन्थ, पृ.1005
79. पलटू साहिब की बानी, भाग1, कुं.32
80. सारबचन संग्रह, 38:मास 12:14
81. आदि ग्रन्थ, पृ.283
82. आदि ग्रन्थ, पृ.893
83. आदि ग्रन्थ, पृ.867
84. आदि ग्रन्थ, पृ.262
85. आदि ग्रन्थ, पृ.288
86. आदि ग्रन्थ, पृ.293
87-88. आदि ग्रन्थ, पृ.134
89. आदि ग्रन्थ, पृ.486
90. आदि ग्रन्थ, पृ.1294
91. आदि ग्रन्थ, पृ.794
92. आदि ग्रन्थ, पृ.730
93. आदि ग्रन्थ, पृ.292-93
94. आदि ग्रन्थ, पृ.522

नाम लेने का उद्देश्य

1. आदि ग्रन्थ, पृ.1123
2. प्राप्त नहीं
3. आदि ग्रन्थ, पृ.958
4. प्राप्त नहीं
5. सारबचन संग्रह 9:9:12
6. आदि ग्रन्थ, पृ.918

नाम लेने के लिए कुछ शर्तें

1. आदि ग्रन्थ, पृ.1378
2. प्राप्त नहीं
3-4. आदि ग्रन्थ, पृ.16
5. आदि ग्रन्थ, पृ.1293
6. आदि ग्रन्थ, पृ.554
7. आदि ग्रन्थ, पृ.176
8. आदि ग्रन्थ, पृ.101
9. सारबचन राधास्वामी छन्द-बन्द, 24:1:148
10. आदि ग्रन्थ, पृ.522
11. सारबचन संग्रह, 15:14:9
12. आदि ग्रन्थ, पृ.1096

जिज्ञासुओं से विनती

1. आदि ग्रन्थ, पृ.223
2. आदि ग्रन्थ, पृ.295
3. दादू दयाल की बानी, भाग 2, पृ.96
4. आदि ग्रन्थ, पृ.761
5. आदि ग्रन्थ, पृ.1383
6. कबीर साखी-संग्रह, पृ.103
7. आदि ग्रन्थ, पृ.1026
8. आदि ग्रन्थ, पृ.943
9. आदि ग्रन्थ, पृ.1046
10. आदि ग्रन्थ, पृ.585

संदर्भ ग्रंथ

हिंदी

कबीर, कबीर *साखी-संग्रह, भाग 1-2*, दसवाँ संस्करण, इलाहाबाद : बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1996

कबीर, *कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1*, इलाहाबाद : बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1998

कबीर, *कबीर ग्रन्थावली*, श्यामसुंदर दास (सं) बाईसवाँ संस्करण, वाराणसीः नागरी प्रचारिणी सभा, सं 2058 (2001)

कबीर, *कबीर अखरावती*, आठवाँ संस्करण, इलाहाबादः बेलवीडियर प्रिंटिग वर्क्स, 2005

दादू दयाल, *दादू दयाल की बानी, भाग 2*, इलाहाबादः बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 2009

पलटू साहिब, *पलटू साहिब की बानी, भाग 1*, तेरहवाँ संस्करण, इलाहाबाद : बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1993

पोद्दार, हनुमानप्रसाद (टीकाकार), *श्रीरामचरितमानस*, नवाँ संस्करण, गोरखपुर : गीता प्रेस गोरखपुर 2003

मीरा बाई, *मीरां बृहत्पदावली*, प्रथम भाग, सं. स्व. श्री हरिनारायणजी पुरोहित, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुरः 1968

संतबानी संग्रह, (साखी), भाग 1, इलाहाबाद, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 2005

स्वामी जी महाराज, *सारबचन संग्रह*, पंद्रहवाँ संस्करण, ब्यासः राधास्वामी सत्संग ब्यास, 2008

आदि ग्रन्थ, सन्था सैंचीआं, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी, भाग 1-2, अमृतसरः शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 2004

English

Holy Bible, King James Version, U.S.A, 1994

परमार्थ संबंधी पुस्तकें

राधास्वामी परंपरा

सारबचन राधास्वामी वार्तिक – हुज़ूर स्वामी जी महाराज
सारबचन संग्रह – हुज़ूर स्वामी जी महाराज

परमार्थी पत्र, भाग1 – बाबा जैमल सिंह जी

गुरुमत सार – महाराज सावन सिंह जी
गुरुमत सिद्धांत, भाग1, 2 – महाराज सावन सिंह जी
परमार्थी पत्र, भाग2 – महाराज सावन सिंह जी
प्रभात का प्रकाश – महाराज सावन सिंह जी
संतमत प्रकाश, भाग1 से 5 – महाराज सावन सिंह जी

आत्म-ज्ञान – महाराज जगत सिंह जी
रूहानी फूल – महाराज जगत सिंह जी

जीज़स क्राइस्ट का उपदेश, भाग1 (सेंट जॉन) – महाराज चरन सिंह जी
जीज़स क्राइस्ट का उपदेश, भाग2 (सेंट मैथ्यू) – महाराज चरन सिंह जी
जीवत मरिए भवजल तरिए – महाराज चरन सिंह जी
दिव्य प्रकाश – महाराज चरन सिंह जी
प्रकाश की खोज – महाराज चरन सिंह जी
पारस से पारस – महाराज चरन सिंह जी
सत्संग संग्रह, भाग1 से 6 – महाराज चरन सिंह जी
संतमत दर्शन – महाराज चरन सिंह जी
संत-मार्ग – महाराज चरन सिंह जी
संत संवाद, भाग1, 2, 3 – महाराज चरन सिंह जी

अध्यात्म मार्ग – जूलियन पी. जॉनसन
अनमोल ख़ज़ाना – शान्ति सेठी
अंतर की आवाज़ – सी. डब्लयू. सैंडर्स
अमृत नाम – महिन्दर सिंह जोशी
अमृत वचन – संकलित
उपदेश राधास्वामी – सहगल, शंगारी, भंडारी, ख़ाक
एक नाम तारे संसार – टी. आर. शंगारी
जागो रे प्यारे जागो (धारणाओं और ग़लतफ़हमियों से परे)
– सबीना ओबरॉय और बैवर्ली चैपमैन
जिज्ञासुओं के लिए – टी. आर. शंगारी
धरती पर स्वर्ग – दरियाई लाल कपूर
नाम सिद्धान्त – शंगारी, ख़ाक, भंडारी, सहगल
परमार्थ परिचय – हेक्टर एस्पाँण्डा डबिन
मत को भरम भुलै संसार – सबीना ओबरॉय
मार्ग की खोज में – फ़्लोरा ई. वुड
मेरा सतगुरु – जूलियन पी. जॉनसन

रूहानी डायरी, भाग 1, 2, 3 – राय साहिब मुंशीराम
संतमत विचार – टी. आर. शंगारी, कृपाल सिंह ख़ाक़
संतमत सिद्धांत
संत संदेश – शान्ति सेठी
संत समागम – दरियाई लाल कपूर
सेवा – लीना चावला राजन्
हउ जीवा नाम धिआए – हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन
हुक्म सिद्धांत – टी. आर. शंगारी
हक़-हलाल की कमाई
हंसा हीरा मोती चुगना – टी. आर. शंगारी

रूहानी परंपरा

कामिल दरवेश ख़्वाजा ग़ुलाम फ़रीद – टी. आर. शंगारी
कामिल दरवेश शाह लतीफ़ – टी. आर. शंगारी
गुरु अर्जन देव – महिन्दर सिंह जोशी
गुरु नानक का रूहानी उपदेश – जे. आर. पुरी
जलाल अल-दीन रूमी – फ़रीदा मलिकी
तुलसी साहिब – जे. आर. पुरी, वी. के. सेठी, टी. आर. शंगारी
दक्षिण भारत के संत-महात्मा, भाग 1 - कर्नाटक – डॉ. एन. सुब्रामण्यम, पी. अरविंद राव, के. जी. रामप्रकाश
धनी धरमदास – टी. आर. शंगारी
नाम-भक्ति: गोस्वामी तुलसीदास – के. एन. उपाध्याय, पंचानन उपाध्याय
परम पारस गुरु रविदास – के. एन. उपाध्याय
पलटू साहिब – राजेन्द्र कुमार सेठी, आर. सी. बहल
पलटू साहिब के पूर्वज संत – टी. आर. शंगारी
बोलै शेख़ फ़रीद – टी. आर. शंगारी
भाई गुरदास – महिन्दर सिंह जोशी
मदन साहिब रचित ग्रंथ: नाम प्रकाश और शब्द बिलास – टी. आर. शंगारी
मीरा: प्रेम दीवानी – वी. के. सेठी
शम्स तब्रीज़ी – फ़रीदा मलिकी
संत कबीर – शान्ति सेठी
संत गरीबदास – टी. आर. शंगारी
संत चरनदास – टी. आर. शंगारी
संत तुकाराम – चन्द्रावती राजवाड़े
संत दरिया (बिहार वाले) – के. एन. उपाध्याय
संत दरिया (मारवाड़ वाले) – जनक गोरवानी
संत दादू दयाल – के. एन. उपाध्याय
संत धरनीदास – टी. आर. शंगारी
संत नामदेव – जे. आर. पुरी, वी. के. सेठी, टी. आर. शंगारी
संत भीमभोई – प्रकाश चंद्र साहू, निरंजन महांत
संत मलूकदास – टी. आर. शंगारी
संत रज्जब – जनक गोरवानी
संत सुन्दरदास – के. एन. उपाध्याय
सरमद शहीद – टी. आर. शंगारी, पी. एस. आलम
सहजोबाई और दयाबाई: प्रभुप्रेम का रूप – टी. आर. शंगारी
साईं बुल्लेशाह – जे. आर. पुरी, टी. आर. शंगारी
सिंध की त्रिवेणी – जनक गोरवानी
सूफ़ी दरवेश हज़रत शाह हुसैन – टी. आर. शंगारी

सूरदास: प्रेम-भक्ति – के. एन. उपाध्याय
स्वर अनेक, गीत एक – जूडिथ शंकरनारायण
हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती (अजमेर के ग़रीब नवाज़) – टी. आर. शंगारी
हज़रत बू अली शाह क़लंदर – टी. आर. शंगारी
हज़रत सुलतान बाहू – कृपाल सिंह ख़ाक, जे. आर. पुरी
बिनती और प्रार्थना के शब्द – संकलित
संतों की बानी – संकलित

विश्व धर्मों में आध्यात्मिकता

अनंद साहिब – टी. आर. शंगारी
आसा की वार – टी. आर. शंगारी
आध्यात्मिक मार्गदर्शक: दृष्टिकोण एवं परंपराएँ, भाग 1, 2 – बैवर्ली चैपमैन
जपुजी साहिब – टी. आर. शंगारी
जैन धर्म: सार सन्देश – के. एन. उपाध्याय
नितनेम की वाणियाँ और सलोक महला ९ – टी. आर. शंगारी
परमार्थी साखियाँ
बावन अखरी, पटी और दखणी ओअंकार – टी. आर. शंगारी
बौद्धधर्म: उत्पत्ति और विकास – के. एन. उपाध्याय
भगत बानी, भाग 1, 2, 3 – टी. आर. शंगारी
भगवद्गीता: सार संदेश – के. एन. उपाध्याय
मोक्ष के मार्ग: वैदिक परंपरा के अनुसार – के. शंकरनारायण
रामचरितमानस: प्रेम और भक्ति – वी. पी. मिश्रा एवं विभा लवानिया
शब्द की महिमा के शब्द
सिध गोस्ट और बारह माहा – टी. आर. शंगारी
सुखमनी – टी. आर. शंगारी

शाकाहार व्यंजन

शाकाहारी भोजन: अंतर्राष्ट्रीय आहार
वैष्णव भोजन, भाग 1
वैष्णव भोजन: ब्रिटिश ज़ायका

बच्चों के लिए पुस्तकें

एक नूर ते सभ जग उपजआ – विक्टोरिया जोन्ज़
आत्मा का सफ़र – विक्टोरिया जोन्ज़
छुपन छुपाई – बैवर्ली चैपमैन

विविध विषय

नारी को अधिकार दो – लीना चावला राजन
सहज की सौग़ात: डेरा बाबा जैमल सिंह

To order books on the internet, please visit: www.rssb.org
भारत में किताबें ख़रीदने के लिए कृपया नीचे लिखे पते पर लिखें:

राधास्वामी सत्संग ब्यास
बी. ए. वी. डिस्ट्रिब्यूशन सेंटर, 5 गुरु रविदास मार्ग
पूसा रोड, नई दिल्ली 110005